CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

संगीत मार्तण्ड 'पद्मश्री' पं० ओंकारनाथजी ठाकुर

हीरक-जयन्ती अभिनन्दन-पत्रिका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत मार्तण्ड पद्मश्री पं० ओंकारनाथ ठाकुर अभिनन्दन-समिति, वाराणसी

अध्यक्ष : श्रीमान् स० वा० शिवेश्वरकर, कमिश्नर, वाराणसी

संयोजक : श्री जगन्नाथ अहिवासी, श्री बलवन्तराय भट्ट, डॉ० कुमारी प्रेमलता शर्मा

मूल्य एक रुपया

प्राप्तिस्थान :
डॉ० कुमारी प्रेमलता शर्मा 'रीडर'
श्री कला संगीत भारती,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी–५

मुद्रक :
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय,
दुर्गाकुण्ड रोड
वाराणसी–५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओंकारपञ्जरशुकीमुपनिषदुद्यानकेलिकलकण्ठीम् ।
आगमविपिनमयूरीमार्यामन्तर्विभावये गौरीम् ॥

ब्रह्मग्रन्थिजमारुतानुगतिना चित्तेन हृत्पङ्कजे
सूरीणामनुरञ्जकश्रुतिपदं योऽयं स्वयं राजते ।
यस्माद् ग्रामविभागवर्णरचनाऽलंकारजातिक्रमो
वन्दे नादतनुं तमुद्धरजगद्गीतं मुदे शंकरम् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ॐ

मंगल प्रशस्तिः

लीलालास्यनिकेतनं सुरगिरः क्रीडास्थलं संस्कृते—
गङ्गायाश्चिरसंगिसद्म नितरां प्रेमास्पदं धूर्जटेः ।
प्राज्ञानामभिमानकेन्द्रमनघं पुण्यात्मनां जीवनं
मुक्तेः कौतुकधाम शं वितनुतां वाराणसीवैभवम् ॥१॥

अद्यत्वेऽत्र विवर्धमानमहिमा श्रीविश्वविद्यालयो
नानाज्ञानकलाकलापकलितो विद्योततेऽहर्निशम् ।
तत्रापि स्वरमाधुरीरसझरैः पाषाणमप्यार्द्रयन्
नादब्रह्म समर्चितुं विजयते संगीतविद्यालयः ॥२॥

कालेनाल्पतमेन तत्र भवताऽध्यक्षेण सञ्चालितः
ख्यातिं कामपि सर्वथाऽस्ति गमितः संगीतविद्यालयः ।
भव्यान् सांस्कृतिकोत्सवानवसरेष्वायोजयन् सर्वदा
साफल्यं कलयन् यशोविलसितः सम्पूज्यतामभ्यगात् ॥३॥

संघीभूय समागतेष्विह कलाकारेषु वैदेशिके—
ष्वात्मीयां स्वरसाधनां प्रकटयन् मुग्धानकार्षीद्बुधान् ।
विद्यासंसदि शिष्यतामिव गतांस्तान् वीक्ष्य सामाजिकः
प्रीत्युत्साहसमन्वितोऽभवदहो श्रीमत्प्रभावोऽमितः ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीमन्तं प्रसमीक्ष्य देशमहिमोद्गारस्य मूलं मुदा
'पद्मश्री' पदवीमदात्सुमनसे ते केन्द्रियं शासनम् ।
त्वं मान्योऽसि तथा तथैव पदवी त्वां प्राप्य सम्मानिता
भात्यम्भोदमुपेयुषी तडिदसौ संशोभमानस्तथा ॥५॥

माता पूज्य 'झवेर बा' ऽथ जनकः पुण्यात्मनामग्रणी
'गौरीशङ्करठक्कुरो'ऽथ, जननस्थानं शुभा गुर्जराः ।
वन्द्यो 'विष्णुदिगम्बरो' गुरुवरो, ग्रन्थः प्रयोगात्मकः
'सङ्गीताञ्जलि'रस्ति तेऽखिलमिदं सौभाग्यशोभास्पदम् ॥६॥

सुधा मधुरनादिनी 'प्रणव भारती' तावकी
स्वरप्रभृतिवल्लकीगुणगणाञ्चिता शोभते ।
यदीयरसनिर्झरोल्लसितवीचिवाचालिता
जयन्ति शुभसम्पदो वलितविभ्रमा गीतयः ॥७॥

वार्धक्ये विशतोऽपि हन्त ! भवतः स्फूर्तिश्च शक्तिश्च नः
सोत्साहं कुरुतो मनः स्वकृतिषु व्यापारयन्त्यौ सदा ।
अब्दं षष्टितमं व्यतीत्य भगवत्प्रीत्या भवान् वर्धते
भूयो भारतमुन्नयन् सकुशलं जीयाच्छतं वत्सरान् ॥८॥

एते स्मो गुणगृध्नवोऽत्र भवतः कल्याणधाम्नो वयं
हर्षोत्कर्षभृतोऽभिनन्दनदलं प्रेम्णाऽर्पयामोऽधुना ।
भानुर्दीपशिखां न वाञ्छति तथाप्युत्कण्ठयाऽकुण्ठया
श्रद्धाभक्तिधनः प्रदर्शयति हि प्रायेण दीपादिकम् ॥९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत-महामहोदय, संगीत-मार्तण्ड, संगीत-सम्राट्, पद्मश्री पं० ओंकार-नाथ ठाकुर की हीरक-जयन्ती के मंगल अवसर पर अभिनंदन समिति के सदस्यों तथा कृतज्ञ शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा समर्पित

मा न प त्र

नादब्रह्म के अनुपम साधक महाभाग गुरुदेव,

भारतीय ऋषि-प्रज्ञा के अनुसार अव्यक्त परात्पर ब्रह्म ने अपनी महिमा से अपने आपको सूक्ष्मतम भावों से क्रमशः कम सूक्ष्म स्वरूप में परिवर्तित करते हुए सबसे अन्त में पञ्चभौतिक रूप में व्यक्त किया है। इसे गीताशास्त्र में क्षर ब्रह्म कहा है। क्षर ब्रह्म के सब भूत विवर्तों में भी आकाश विवर्त सबसे सूक्ष्म है जो ब्रह्म के समान ही निखिल विश्व में व्याप्त है। उसी आकाश का गुण शब्द है जो नादब्रह्म के रूप में श्रवणेन्द्रिय के द्वारा हमारे प्रत्यक्ष अनुभव में आता है। इसी नादब्रह्म को वाक् कहते हैं जिसकी छन्दोमयी ध्वन्यात्मक तरंगों से विश्व और विश्व में जो कुछ है उस सबका निर्माण हुआ है और हो रहा है। शब्दब्रह्म एवं वाग्देवी की नादमयी अभिव्यक्ति की जैसी आराधना और उपासना भारतीय ऋषियों ने की वह विश्व के इतिहास में विलक्षण है। मंत्रात्मिका वाक् के नादात्मक स्वरूप की ही संज्ञा सामवेद या साम संगीत है जिसे गीता में भगवान् का साक्षात् स्वरूप कहा है। महाकवि रवि ठाकुर के अनुसार 'प्रथम सामरव तव तपोवने' अर्थात् भारत के तपवनों में सर्वप्रथम ऋषियों ने सामगान का उद्घोष किया।

श्रद्धेय,

प्राचीन युगों में नारदादि महर्षियों ने जिस गान्धर्व वेद को पुष्पित और पल्लवित किया था, जिस गानविद्या ने युग-युग में भारतीय संस्कृति की आत्मा को ब्रह्मनिष्ठ बनाये रखा है, उसी लोक परलोक में कल्याण-विधात्री संगीत विद्या को राष्ट्र के अभ्युदय को प्रभात वेला में संगीत-महर्षि श्री विष्णु दिगम्बर ने ऐसे पुनः प्रचारित किया जैसे भगवान् सूर्य अपनी रश्मियों से लोक में चैतन्य का वितरण करते हैं। स्वर-ब्रह्मके अनन्य साधक उन विष्णु दिगम्बरजी के आप प्रतिनिधि शिष्य हैं, यह तथ्य ही न्यूनतम शब्दों में आपकी सबसे बड़ी स्तुति है। श्री पलुस्करजी के महान् स्वप्न को स्वर, राग और रस की एकनिष्ठ साधना से आपने मूर्तरूप दिया है। अपने ऋषिकल्प पितुश्री की समाधिगम्य प्रणवसाधना को बाल्यकाल के तरंगित क्षणों में ही आपने प्राप्त कर लिया था और जन्म भर उन्हीं संस्कारों से आप संचालित होते रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाग्देवी के वरद पुत्र,

रसकी एकान्त अभिव्यक्ति ही जीवन है। वह संगीत के द्वारा किस प्रकार मानव के लिए संभव हो सकती है, आपने इसका सत्यात्मक उपाय सिद्ध किया है। संगीत-शास्त्र के प्रचार प्रशिक्षण एवं तज्जनित रसानुभव के क्षेत्र में आपने इस युग में देश-विदेश में जैसा प्रयत्न किया है उसको साका ही कहना चाहिए। नादब्रह्म की कोई नीरस उपासना नहीं, किन्तु सरस भावों में उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति, यही आपके संगीत की महती विशेषता है। आपके पुण्यश्लोक गुरु और स्वयं आपने लगभग अर्धशती तक निरन्तर संघर्ष करके राष्ट्र के संगीत को प्रतिष्ठा प्रदान की है और उसे सब प्रकार तेजस्वी बनाया है। उसे विलास के कल्मष से दूर रख कर उसके पावन उद्देश्य को चरितार्थ किया है। आपके सत्प्रयत्नों से आज इस देश का संगीत अपने प्राचीन दिव्य स्वरूप से लोगों को आकर्षित कर रहा है। उसका भविष्य उज्ज्वल है। देश की उच्चतम विद्या साधना में उसे स्थान प्राप्त हो गया है। आपके चरित का अमल गौरव एवं सबल व्यक्तित्व दोनों भारतीय संगीत को गौरवशाली बनाने में प्रयुक्त हुए हैं। इस कारण आपके देशवासी आपके कृतज्ञ हैं।

महान् गुरुवर्य,

इस पवित्र हीरक-जयन्ती के अवसर पर हम सब यह जानकर गद्गद् हैं कि भगवान् ने आयुष्य के जो षष्टि संवत्सर आपको अब तक प्रदान किये उन्हें आपने भगवती वाग्देवी की सेवा में अर्पित किया। उसी देवाधिदेव शब्दब्रह्म से हमारी नम्र प्रार्थना है कि आप आयुष्य के शत वर्षों तक और उससे भी अधिक वर्षों तक स्वर, राग और रसरूपी त्रयी विद्या की सेवा के लिए अमृत जीवन का उपभोग करते रहें।

संगीत-तपस्विन्,

आपके वर्तमान उत्साह और कार्यों को देखते हुए यह प्रकट है कि आपके हृदय का शतदल पुण्डरीक इस समय सविशेष विकसित है। यही समय है, जब आपके द्वारा संगीत-शास्त्रके भावी कल्याण की किसी महती योजना का सूत्रपात किया जाय। संगीत के आदिगुरु भगवान् शिवकी इस पावन पुरी में संगीत विश्वविद्यालय के रूप में आपके आश्रम की प्रतिष्ठा हो, यह हम सबकी अन्तरङ्ग कामना है। हम इस पुण्य कार्य में सब भाँति आपके आदेश का पालन करते हुए अपना जन्म सफल समझेंगे। भारतीय सङ्गीत को जो उच्चपद वैदिक एवं प्राचीन युगों में प्राप्त था वही इसे आपके प्रयत्नों से पुनः प्राप्त हो इस अभिलाषा को व्यक्त करते हुए हमें विदित है कि भारती महाप्रजाओं की भी यही आकांक्षा है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
शुक्रवार, ३० अगस्त, सन् १६५७,
भाद्रपद, शुक्लपक्ष, षष्ठी तिथि, वि० सं० २०१४

हम हैं विनयानवत,
अभिनन्दन समिति के सदस्य तथा
आपके समस्त शिष्य-प्रशिष्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

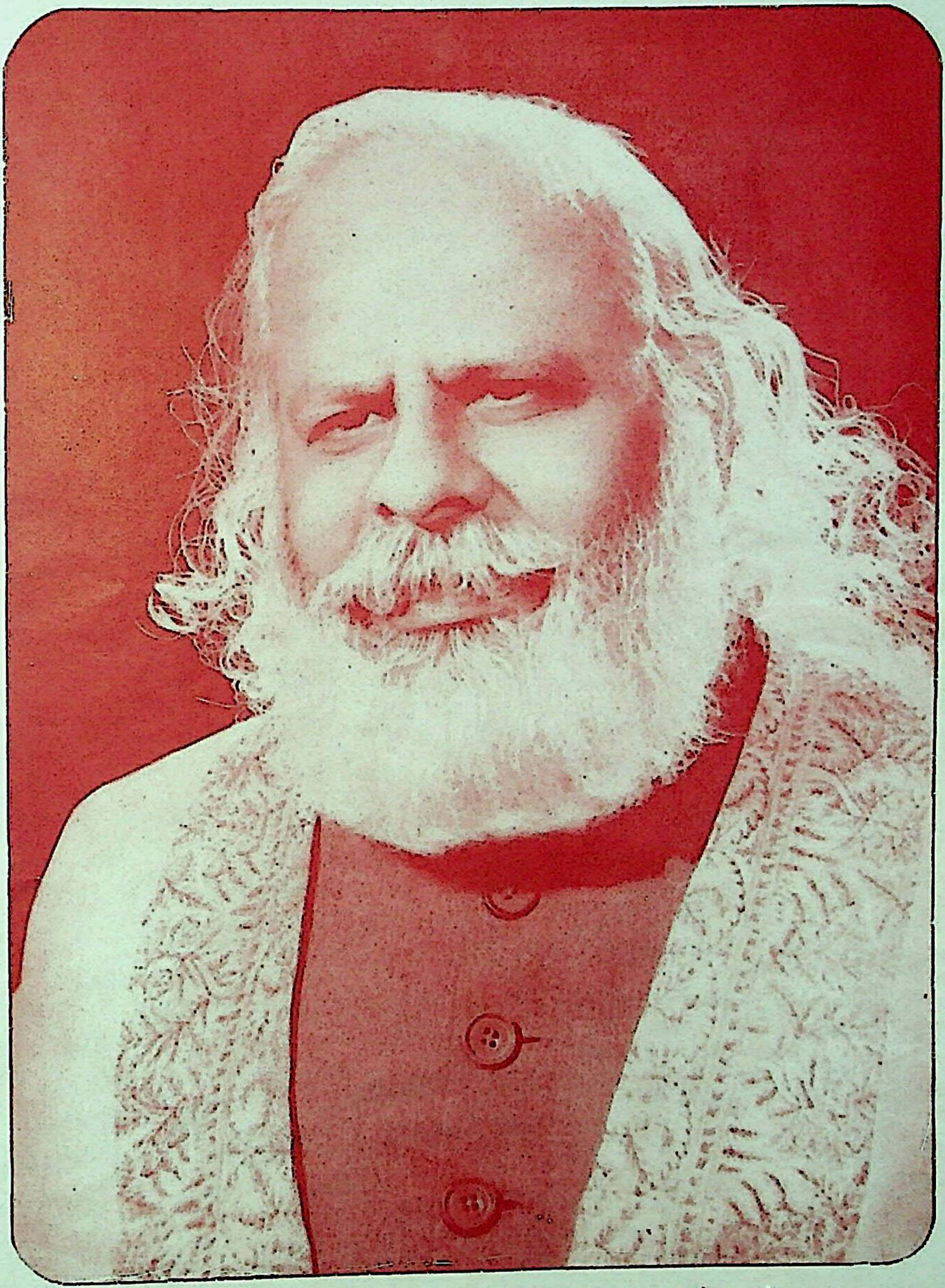

अतल गहन दृष्टि अमल तेजपूर्ण भाल, रजत-धवल केश ज्ञान-प्रौढ़ता विशाल।
अनुभव-परिपाक सहित फलत नव रसाल, नव अंकुर नवल बीज यह विकास काल ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन-चरित्र • अनुपम साधना
एवं सिद्धि की गाथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. भूमिका

नारद की अपूर्ण संगीत-साधना के कारण विकलांग बने हुए राग-रागिनियों ने जैसे 'त्राहि त्राहि' की पुकार देव-लोक में गुंजा दी थी वैसे ही एक बार कला और शास्त्र—संगीत के ये दो पक्ष परस्पर वियोग से संतप्त होकर पुनर्मिलन की आतुरता से देवलोक की शरण में गये। स्वयं भगवती भारती भी इस विषम परिस्थिति में गहरी वेदना का अनुभव कर रही थीं क्योंकि उनके एक हस्त में धारण की हुई वीणा की साधना अपर हस्त में सुशोभित पुस्तक की ज्ञानधारा से विच्छिन्न हो गई थी और पुस्तक का अध्ययन वीणा की स्वर-लहरी से विमुख हो रहा था। भारतीय संगीत का यह वह काल था जब कि शास्त्र के वियोग से कला श्रीहीन हो गई थी और कला के वियोग से शास्त्र पथ-भ्रष्ट हो चला था। इस द्विदल सीप का सम्पुट छिन्न हो जाने से रस का मुक्ताफल भी सुरक्षित नहीं रह पाया था। साथ ही भद्र समाज में संगीत-साधना के प्रति उदासीनता बढ़ने लगी जो धीरे धीरे घृणा का रूप ले बैठी। जहाँ संगीत को मन-बुद्धि के स्थैर्य तथा विकास का एवं आत्मा की उपलब्धि का श्रेष्ठ उपाय माना जाता था, वहाँ उसे अब केवल विलास का साधन माना जाने लगा; जो संस्कारिता के उच्चतम आसन पर आरूढ़ था, वही अब असंस्कार या कुसंस्कार के कल्मष में डूब गया। एक ओर कला तथा शास्त्रका वियोग एवं दूसरी ओर संगीत के सामाजिक स्तर का पतन—भारतीय संगीत की विषम परिस्थिति के ये दोनों पहलू परस्पर कार्य-कारण-भाव से जुड़े हुए थे। इसलिए दोहरी अवनति के इस पंक से संगीत का उद्धार करने के हेतु कला और शास्त्र का पुनर्मिलन तथा समाज में संगीत के प्राचीन गौरव की पुनः स्थापना—ये दोनों कार्य भी परस्पर आश्रित थे। दोनों दिशाओं में भागीरथ प्रयत्न अपेक्षित था जो किसी दैवी सत्ता द्वारा ही संभव था। उस दैवी सत्ता ने राष्ट्र के नव जागरण के इस युग में जिन दो विभूतियों को इस महत् कार्य के लिए अग्रदूत बनाया उनसे आज कौन अपरिचित होगा? उनमें से प्रथम हैं संगीतोद्धारक स्व० पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर और द्वितीय हैं उन्हीं के शिष्यप्रवर तथा उन्हीं के कार्य को नाना दिशाओं में अग्रसर करने वाले संगीतद्रष्टा पं० ओंकारनाथ ठाकुर। संगीतावतार गुरुदेव के आरम्भ किये हुए संगीत के पुनरुत्थान के पुनीत कार्य को अपनी बहुमुखी प्रतिभा द्वारा प्रबल वेग से गतिशील बनानेवाले स्वनामधन्य इन संगीतद्रष्टा की हीरक-जयन्ती के परम शुभ अवसर पर आज संगीत-जगत् में उल्लास, आह्लाद और आनन्द का साम्राज्य है। इन मंगलमय क्षणों में उनकी इस साधना और सिद्धि की गाथा प्रेरणा का अखंड स्रोत प्रस्तुत करती है। उसी स्रोत में थोड़ा सा अवगाहन करने का यह लघु प्रयास है। उनकी यह गाथा भावी सन्तति के लिए किसी व्यक्ति विशेष का जीवन-चरित्र मात्र न होगी, प्रत्युत मर्मस्पर्शी स्वर-साधना की, रसवाही भाव-साधना की, अनिर्वचनीय भावों को मूर्तिमन्त करने वाली राग-साधना की, स्थूल पार्थिव बन्धनों से ऊपर उठाने वाली कला-साधना की, प्राचीन शास्त्रों के दुरूह सिद्धान्तों को सुगम बना कर वर्तमान लक्ष्य के साथ उन्हें सम्बद्ध करने वाली ज्ञान-साधना की और संगीत को भक्ति तथा योगमार्ग के समकक्ष उठाने वाली नाद-साधना की गाथा होगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. वंशानुगत संस्कार

पुनर्जन्म के भारतीय सिद्धान्त को स्वीकार न करनेवाले पाश्चात्य विचारक भी Heredity (वंश परम्परा प्राप्त गुण) की महत्ता स्वीकार करने को वाध्य हुए हैं। जन्म से पूर्व एवं उसके वाद वाल्यकाल में माता पिता द्वारा जो संस्कार वालक को प्राप्त होते हैं, उन्हीं पर उसके भावी जीवन की सफलता या विफलता का वहुत कुछ आधार रहता है, यह तथ्य किसी न किसी रूप में सर्वत्र स्वीकार किया जाता है। जन्म जन्मान्तर से संचित संस्कार-पुंज को जहाँ एक प्रकार की देह ही माना गया है, उस भारतवर्ष में वंशानुगत संस्कार (Heredity) की प्रवल महत्ता स्वीकृत हो, इसमें क्या सन्देह हो सकता है ? इस दृष्टि से पं० ओंकारनाथजी की संस्कार-परम्परा हम देख लें।

पंडितजी के पितामह पं० महाशंकर ठाकुर ने सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-संग्राम में नाना साहव पेशवा के साथ अग्रगण्य भाग लिया था। पेशवा साहव के परिवार को संकट की स्थिति में नेपाल पहुँचाने का भार भी उन्हीं को सौंपा गया था। कानपुर, कालपी, झाँसी इत्यादि की लड़ाइयों में वे वीरतापूर्वक लड़े थे और यहाँ तक कहने में आता है कि नाना साहव पेशवा और तात्या साहव टोपे ने यदि उनकी सलाह मान ली होती तो शायद पराजय न होती। वे ज्योतिष के प्रखर गणिती भी थे। पितामह की इस देशभक्ति और शौर्य का परिणाम पिता पर पड़ा और वे वड़ौदा राज्य की सेना में भर्ती हुए। महारानी जमनावाई साहव जिन्होंने सायजीराव गायकवाड़ को गोद लिया था, उनके राज्यकाल में पंडितजी के पिता पं० गौरीशंकर ठाकुर २०० घुड़सवारों के सरदार थे। उनकी वीरता वहुत विश्रुत थी। ५० या १०० डाकू भी क्यों न हों उनका मुक़ावला वे अकेले कर लेते और उन्हें सदा परास्त करते थे। रियासत भर में डाकुओं का दमन उन्हीं के ज़िम्मे था। कहा जाता है कि एक वार शाही खज़ाने की तिज़ोरियाँ कहीं ले-जाई जा रही थीं। कुछ सशस्त्र पहरेदार और नायक के रूप में पं० गौरीशंकर भी साथ में थे। तिजोरियों वाले वाहन के चारों ओर सशस्त्र सैनिक रहने के कारण पिताजी पूरे दल से कुछ हट कर चल रहे थे। इसी वीच डाकुओं के एक दल का आक्रमण हुआ और पहरेदारों ने सहायतार्थ पिता जी को पुकारा। पुकार सुनते ही उन्होंने गरज कर उत्तर दिया। उस गरज को सुनते ही डाकुओं का सरदार अपने साथियों से वोला, 'भाई इनके साथ तो मर्द आदमी है, भाग चलो, नहीं तो मारे जाओगे।' इसी प्रकार की एक और घटना भी सुनने में आती है। शाही खज़ाने की वैलगाड़ी एक वार जव एक गाँव के सिवाने पर पहुँची तो सामने एक भीमकाय साँड वैलों को मारने के लिए दौड़ता हुआ आया। इस साँड का भीषण वल दूर-दूर तक कुख्यात था। पिताजी ने वैलों की रक्षा के लिए विना किसी शस्त्र का प्रयोग किये केवल अपने वाहुवल से उस साँड को नियंत्रित किया। और वह इस प्रकार कि पहले तो हाथों में रेत भर-भर कर उन्होंने उसकी आँखों में झोंक दी। आंखों में रेत भर जाने से जव वह कुछ विक्षिप्त-सा हो उठा, तव उसके सींगों को पकड़ कर ऐसा पछाड़ा कि साँड चारों खाने चित्त हो गया और तभी तुरन्त उसके पैर वँधवा दिये गये। ऐसी तो असंख्य घटनाएँ उनके जीवन में वनी होंगी, जो उनके असीम साहस, अदम्य वीरता और अखंड वाहुवल की परिचायक थीं। कहा जाता है कि लाठी फिराने में वे इतने कुशल थे कि यदि २० व्यक्ति भी उन पर लाठी से प्रहार करने लगें तो वे अकेले हाथ से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनी पूरी रक्षा कर लेते थे। और यदि ५० व्यक्ति मिलकर पत्थर फेंकें तो भी वे इतनी कुशलता से लाठी घुमाते थे कि एक भी पत्थर उन्हें न लगने पाये। इस प्रकार राज्य के रक्षाकार्य में तथा स्वमान पर आँच न आने देने में वे अपनी बेजोड़ वीरता के लिए रियासत भर में प्रसिद्ध थे। शौर्य तथा पराक्रम से भरे हुए उनके इस जीवन का एक दूसरा भी पहलू है जो आज हमारे लिए विशेष सार्थक है और वह इस प्रकार है।

राज्यसेवा के कार्यकाल में ही वे अलूणी (अलोनी) बाबा नाम के एक योगी के सत्संग में आये। उनसे प्रणव की दीक्षा लेकर वे उस साधना में लीन हो गये। कहते हैं कि साधना के समय उनका प्रणव का उच्चार इतना बुलन्द होता था कि दो-दो तीन-तीन मील तक सुनाई देता था। इसी प्रणव-साधना के काल में पं० ओंकारनाथजी गर्भ में आये। बालक के जन्म के पूर्व ही पिताजी ने कह दिया था कि उसका नाम ओंकारनाथ रखा जायगा। लोगों ने उपहास में कहा भी 'यदि कन्या हुई तो क्या करेंगे ?' किन्तु उनका विश्वास अटल था और उसीके अनुसार बालक का जन्म मेषराशि में ही हुआ जिससे राशि के अनुसार भी पूर्व निर्धारित नामकरण सुसंगत रहा।

इस प्रकार असाधारण शौर्य तथा तेजस्विता के साथ-साथ प्रणव-साधना के, नाद-योग के संस्कार पंडितजी को जन्म से पूर्व ही पिता की ओर से प्राप्त हुए थे। यों भी कह सकते हैं कि ब्राह्मण वंशोचित उदात्त संस्कारों के साथ-साथ क्षत्रियोचित साहस तथा वीरता के संस्कार भी उनकी रग-रग में घुले हुए हैं। पिताजी ने जीवन का बड़ा भाग आततायियों के दमन के लिए शस्त्र-संग्राम में बिताया था। उनकी प्रणव-साधना के संस्कारों को संगीतमय नाद की साधना में परिणत करने वाले उनके सुपुत्र के जीवन में शस्त्र-संग्राम को तो स्थान नहीं रहा है, किन्तु संगीत के प्रति अनादर, हेय-भाव या संगीत-शास्त्र में पूर्वग्रहवश सत्यविमुखता— इन सबके दमन का भार सदैव रहा है और इस प्रकार वे एक भिन्न क्षेत्र के वीर सेनानायक हैं।

यहाँ यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि इन संगीत-मार्तण्ड को जन्म देने वाली प्राचीरूपा माता भला कैसी रही होंगी ? जन्म के पूर्व एवं पश्चात् जिनकी संस्कार-छाया में पल कर, संवर्धन पाकर पंडितजी संगीत-सम्राट् के उच्च आसन पर आरूढ़ हुए, वे रत्नगर्भा जननी किन गुणों से विभूषित रही होंगी ? इसके उत्तर में अभी यहाँ तो केवल इतना ही कह सकते हैं कि मातुश्री झवेरबा स्वाभिमान, कठोर परिश्रमशीलता तथा प्रचंड देहबल की स्वामिनी थीं। यों तो पंडितजी के बाल्यकाल के घटनाक्रम में ही माताजी के ओजमय चारित्र्य का दर्शन हो जायगा किन्तु एक घटना यहाँ अन्य दृष्टि से उल्लेख योग्य है।

पंडितजी के मातामह तथा पितामह दोनों का नाम महाशंकर था। बड़ौदा रियासत के वटादरा ग्राम निवासी मातामह जब पंडितजी के पितामह के पास अपनी कन्या का पं० गौरीशंकर के साथ वाग्दान सम्बन्ध जोड़ने का प्रस्ताव लेकर पहुँचे तब पहले तो पितामह ने अस्वीकृति ही दी, किन्तु कुछ देर बाद जब मातामह निराश होकर लौटनेवाले थे तब पितामह ने अचानक इस संबंध को स्वीकार कर लिया और अपना निर्णय बदलने का कारण बताते हुए कहा—"दोनों की कुंडली को देखते हुए ऐसा लग रहा है कि तीखा स्वभाव होने के कारण इनका दाम्पत्य-जीवन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहुत सुखी नहीं रहेगा। दोनों का आपस में विरोध हुआ करेगा, किन्तु फिर भी दूर भविष्य में मुझे बहुत ही उज़ाला दिखाई दे रहा है।" पंडितजी की विश्वव्यापी कीर्ति को देखते हुए पितामह का यह वचन अक्षरशः कितना सत्य है।

३. जन्म तथा बाल्यकाल

२४ जून सन् १८९७ (ज्येष्ठ कृष्णपक्ष दशमी, गुरुवार वि० सं० १९५४) को पंडितजी की जन्म-तिथि होने का सौभाग्य प्राप्त है। बड़ौदा रियासत के तहसील भादरण (वर्तमान जिला कैम्बे) का जहाज ग्राम उनकी जन्म-भूमि होने से गौरवान्वित है।

पंडितजी के दो ज्येष्ठ भाई तथा एक बहन थीं। उनके जन्म के समय ज्येष्ठ भाई पं० बालकृष्ण की प्रायः बारह वर्ष, बहिन पार्वती की प्रायः आठ वर्ष और भाई पं० रविशंकर की प्रायः चार वर्ष की आयु थी। रहन-सहन संयुक्त परिवार में था। पिताजी तो प्रायः अपने कार्यवश गाँव से बाहर ही रहते थे और माताजी सास-ससुर तथा जेठ के परिवार के साथ अपने बालकों को लेकर गाँव में रहती थीं। पंडितजी के जन्म के समय वे कुटुम्ब-कलह से पीड़ित थीं, पति दूर परदेश में थे, सब संपत्ति कुटुंबियों ने ही लूट ली थी और इस प्रकार अभाव का साम्राज्य था। उनके जेठ यानी पंडितजी के ताऊ का इस परिवार के साथ बहुत ही क्रूर व्यवहार था। उस अवस्था में पीहर जाने में माताजी के स्वाभिमान पर आँच आती थी। इसलिये वे हिम्मत न हारते हुए, सगे-संबंधियों की अपेक्षा छोड़कर और लोकचर्चा की परवाह त्याग कर दस दिन के बालक ओंकारनाथ को लेकर आषाढ़ की बरसात में दूसरों के खेत में निराई की मज़दूरी करने निकल पड़ीं। इस घटना से पूरे ग्राम में हाहाकार मच गया। ग्राम के वृद्धजन तथा बिरादरी के बुजुर्ग माताजी के जेठ को उनके इस अत्याचार पर शतशः धिक्कार देने लगे। किन्तु उन पर कोई असर न हुआ और इधर माताजी किसी की कोई परवाह किये बिना, किसी से कोई अपेक्षा रखे बिना मज़दूरी करती रहीं और अपनी चारों संतान का भरण-पोषण करती रहीं। सब प्रकार के अभाव एकत्र होकर भी उनके स्वाभिमान को तनिक भी विचलित न कर सके, किसी प्रकार उन्हें डिगा न सके और उनकी हिम्मत लूट न सके।

यह तो हम देख ही चुके हैं कि पंडितजी के जन्म के पूर्व ही उनके पिताजी प्रणव-साधना में संलग्न हो गये थे। उसके बाद उनका जीविकोपार्जन का कार्य यद्यपि चालू रहा, किन्तु सांसारिक विषयों की ओर से उदासीनता तथा संयुक्त परिवार के संचालन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करने की प्रवृत्ति प्रबल रही। इसलिये मातुश्री झवेरबा को बालकों का लालन-पालन काफ़ी अभावग्रस्त दशा में करना पड़ा। इस प्रकार पंडितजी का शैशव स्थूल दृष्टि से देखने पर अभाव भरा दिखाई देगा।

जब पंडितजी की आयु प्रायः ४ वर्ष की थी तब कुटुम्ब में एक विशेष घटना घटी, जिसने पिताजी के जीवन को एक नया मोड़ दिया। एक दिन जब पिताजी पूजा के बाद मंदिर से घर लौटे तब देखा कि उनके बड़े भाई पं० रेवाशंकर अपने पिता के साथ बड़ी नृशंसता का व्यवहार करके सारी सम्पत्ति अपने नाम लिखवा लेने की कठोर माँग कर रहे थे। पिता ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

वाध्य होकर पंडित गौरीशंकर से अनुरोध किया कि वे सारी सम्पत्ति त्याग कर उसे पंडित रेवाशंकर के नाम तुरन्त लिख दें। पिता की आज्ञा मान कर गौरीशंकरजी ने सारी सम्पत्ति एक क्षण में त्याग दी। रेवाशंकरजी का अनौचित्य यहाँ तक बढ़ा कि सारी सम्पत्ति अपने नाम लिखवा लेने के वाद उन्होंने गौरीशंकरजी के परिवार को घर में से एक भी वस्तु लेने न दी और खाली हाथ उन्हें और उनके परिवार को घर छोड़ देने के लिए वाध्य किया। यहाँ तक कि झवेरवा के स्त्रीधन के गहने या परिवार के पहनने के कपड़े या उपयोग के वर्तन कुछ भी छूने न दिया। उस अवस्था में पं० गौरीशंकरजी मथुरभाई पटेल नामके व्यक्ति से १२ रुपये उधार लेकर अपने परिवार समेत पैदल चल कर भड़ौंच आये। तभी उन्होंने राज्यसेवा भी छोड़ दी। सगे भाई के इस क्रूर व्यवहार से उन्हें मार्मिक चोट लगी थी और गहरे निर्वेद के भाव उनके हृदयाकाश पर छा गये थे, किन्तु परिवार के उत्तरदायित्व को देखते हुए उन्होंने तुरन्त संसार त्याग नहीं किया और किसी प्रकार इधर-उधर थोड़ा वहुत काम करके परिवार का भरण-पोषण करते रहे।

गाँव से आने के वाद कुछ दिन के लिये वालकों सहित झवेरवा को उन्होंने ससुर के यहाँ छोड़ दिया था, किन्तु वालक ओंकारनाथ को अति वाल्यकाल से ही पिता का संग वहुत प्रिय था। इसलिये पिता को छोड़ कर ननिहाल में रहना उन्हें तनिक भी नहीं भाता था। उनकी ४ वर्ष की आयु में ही एक वार ननिहाल में कोई वड़ा भोज था और झवेरवा सभी वालकों को लेकर वहाँ उपस्थित थीं। भोज की तैयारी चल रही थी, किन्तु पंडितजी को पिता के पास पहुँचने की इतनी आतुरता हुई कि वे सबकी आँख वचाकर चुपचाप वहाँ से निकल भागे और कड़ी दुपहरी की तपती वालू में प्रायः ३-४ मील का रास्ता तय करके पिता के पास पहुँच गये। भोज का लालच छोड़कर इतने छोटे से वालक का चुपचाप निकल पड़ना और नंगे पाँव कड़ी धूप में इतना लम्बा रास्ता तय करना, ये सब वातें आश्चर्य में डाल देती हैं। इस घटना से पंडितजी का सहज पितृप्रेम और ठानी हुई वात को कर डालने की दृढ़ता, ये दोनों वातें स्पष्ट होती हैं। वे वताते हैं कि किसी भी वाह्य कारण के विना उन्हें भीतर से ही सहज ऐसी इच्छा होती थी कि पिता के सान्निध्य में ही रहें और उस सान्निध्य के लिये भोजन आदि सव कुछ त्याग देना उस वाल्यावस्था में भी उनके लिये सहज था। माताजी भी स्वाभिमान की रक्षा के लिये अधिक दिन पीहर में नहीं रहीं और विकट आर्थिक परिस्थिति में भी पतिगृह में ही किसी प्रकार परिवार-भार को निभाती रहीं। निर्धनता का सामना करने के लिये वे स्वयं भी वाहर काम करने जातीं और जो कुछ वन पड़ता कमा कर लातीं। वालक ओंकारनाथजी की चेतना इतनी तीव्र थी कि उतनी छोटी आयु में भी परिवार की निर्धनता को दूर करने का वे उत्तरदायित्व समझते और किसी न किसी प्रकार से जीविकोपार्जन में माता-पिता की सहायता करने का पूरा यत्न करते। वे कहा करते हैं कि प्रायः ५-६ वर्ष की आयु में उन्होंने एक वकील के यहाँ रसोइये का काम किया था। उस घर में एक वुढ़िया नौकरानी थी जो इस वालक को रसोई वनाना सिखाया करती थी।

यहाँ एक वात विशेष उल्लेखनीय है और वह यह कि निर्धनता की चरम अवस्था में भी माता पिता से मिले हुए स्वाभिमान के दृढ़ संस्कार पंडितजी के वाल-हृदय से कभी नहीं छूटे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्हीं दिनों उनकी माता किसी सम्पन्न परिवार में रसोई बनाने का कार्य करती थीं। सुबह शाम रसोई का काम करने के बाद वे घर लौट कर बच्चों को भोजन आदि कराती थीं। एक दिन उन्हें किसी कार्यवश वहाँ से लौटने में देर हो गई। घर में बालक भूखे थे, इसलिये पंडितजी उन्हें बुलाने वहाँ पहुँचे। माँ के पास जाकर चुपके से कहा, "सभी को बहुत भूख लगी है, आप कब चलेंगी ?" माँ ने भी धीरे से समझा दिया कि अब देर नहीं होगी वे जल्दी से जल्दी आ जायँगी। परिवार की स्त्रियों को इस चपल बालक से कुछ बात-चीत करने को जी हुआ और उन्होंने पूछा, "क्यों भोजन हो गया क्या ?" बालकने तुरन्त उत्तर दिया, "हाँ।" उन्होंने फिर पूछा, "क्या खाया ?" बालक का उत्तर था, "जो घरमें बना था।" "घर में क्या बना था ?" उन्होंने फिर पूछा। और बालक ने पूरे विश्वास के साथ कहा, "जो बाजार में मिलता है।" इन उत्तरों से सब लोग आश्चर्यचकित रह गये।

प्राय: ३–४ वर्ष इसी प्रकार बीते। पिताजी का वैराग्य दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। कन्या का विवाह और रविशंकरजी तथा ओंकारनाथजी इन दो पुत्रों का यज्ञोपवीत सम्पन्न करके वे उत्तरदायित्व से मुक्त हो गये। उस समय पंडितजी के छोटे भाई पं० रमेशचन्द्र गर्भ में थे। उनके जन्म के कुछ काल पूर्व ही पिताजी ने संन्यास लेकर सदा के लिये गृह-त्याग किया और नर्मदा के तट पर कुटिया बांध कर वहीं योग-साधना में तल्लीन हो गये। तभी से पंडितजी पिता की सेवा में वहीं रहने लगे। जल भरना, कुटिया की सफ़ाई करना, कपड़े धोना, रसोई बनाना इत्यादि सभी काम वे करते थे और साथ ही माँ की सहायता के लिये कुछ कमाने का यत्न भी यथासंभव चालू रखते थे। मिल में काम और रामलीला की पार्टियों में अभिनय का काम इन दोनों का वे बहुधा ज़िक्र किया करते हैं। इसके अलावा एक बार उन्होंने एक जैन उपाश्रय में झाड़ू लगाने का काम भी किया था। तड़के ५ बजे वहाँ झाड़ू लगाना होता था और उसी समय आश्रम के मुनि लोग अपने साधु-शिष्यों को पढ़ाया करते थे। पंडितजी झाड़ू लगाते समय जो कुछ भी सुन लेते वह उन्हें तत्काल याद हो जाता और गुरु लोग जब शिष्यों से प्रश्न करते तब उन लोगों से भी कहीं अधिक सन्तोषकारक उत्तर पंडितजी देते। उनकी इस कुशाग्र बुद्धि को देख कर मुनि लोग बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने पंडितजी को भी और शिष्यों के साथ बिठाकर पाठ देना शुरू कर दिया। इस प्रकार उन्हें अर्धमागधी का कुछ परिचय हुआ।

जिस प्रकार पंडितजी को पिता की सेवा में रहना अत्यन्त प्रिय था, उसी प्रकार पिताजी को भी अन्य किसी से भी कोई सेवा लेना स्वीकार न था। उनकी सेवा में रहने से पंडितजी को अनेकों कष्ट झेलने पड़ते थे, क्योंकि पिताजी अयाचक वृत्ति के साधु थे। और भगवत्-प्रेरणा से अपने आप जो कोई ठाकुरजी के नाम से कुछ दे जाय, उसी का भगवान् को नैवेद्य चढ़ा कर प्रसाद लेते थे। कभी-कभी ऐसे मौक़े भी आते थे कि चार-चार दिनों तक भूखे रहना पड़ता था। किन्तु पंडितजी को इन सब कष्टों से कभी किसी प्रकार की कुंठा का बोध नहीं हुआ। उस छोटी आयु में भी वे सहर्ष इन कष्टों को झेल कर पिता की सेवा में संलग्न रहते थे। पिताजी का अनुशासन इतना कठोर था कि पंडितजी को अन्यत्र कहीं भी भोजन करने की अनुमति नहीं थी। यहाँ तक कि यदि कभी वे माता के पास भोजन कर आते तो उन्हें शुद्धि के लिये २४ घंटे का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपवास करना पड़ता था। पंडितजी एक ओर तो पिता की सेवा के लिये इस कठोर अनुशासन का पालन करते और दूसरी ओर परिवार के भरण-पोषण में माता की सहायता करने के लिये वे प्राणपण से यत्नशील रहते थे। बरसात के दिनों में नर्मदा की बाढ़ से उखड़े हुए पेड़ नदी में बहते हुए आते थे और पंडितजी नदी में तैर कर पेड़ों की बड़ी-बड़ी डालें ढकेल कर किनारे तक ले आते थे और इस प्रकार माता के लिये साल भर का ईंधन जुटा देते थे। मिल में काम करके या रामलीला में अभिनय करके जो कुछ भी कमाई होती वह माता को ही अर्पण की जाती थी। रामलीला में लक्ष्मण की पात्र-भूमिका के अभिनय में वे विशेष कुशल थे। एक बार किसी रामलीला की पार्टी में ४ महीने तक काम करने के बाद ३२) रुपये मिले। उस समय पंडितजी भड़ौंच से प्रायः ३५ मील दूर किसी ग्राम में थे। यह एकत्रित वेतन धोती की अंटी में छिपा कर १० वर्ष का वह बालक पैदल ३५ मील का मार्ग १ दिन में तय करके रात को घर पहुँचा और वह सारी कमाई उसने माता के चरणों पर धर दी। रास्ते में रात हो जाने से कोई लूट न ले इस भय से सारा रास्ता एक ही दिन में तय किया। किसी वाहन में आने से व्यय करना पड़ेगा और माता को अर्पण करने के लिये संचित धन में कमी हो जायगी, इस विचार से पैदल ही पूरा मार्ग तय करके वे घर पहुँचे। ऐसी तो कितनी ही घटनायें उनके बाल्यकाल में बनी होंगी जो उनके स्वाभिमान और परिवार के प्रति उत्तरदायित्व की ठोस भावना की परिचायक हैं।

पिताजी ने तो संसार-त्याग कर दिया और पारिवारिक उत्तरदायित्व से मुक्त हो गये, किन्तु माता भला बालकों को छोड़ कर कहाँ जाती? बालकों के लालन-पालन के लिये वे जो कठोर श्रम करती थीं उसका वर्णन आज कल्पित कहानी सा मालूम दे तो कोई आश्चर्य नहीं। उनकी श्रम-चर्या इस प्रकार थी। रात को ३ बजे उठकर नाक और मुँह पर पट्टी बाँध कर वे तमाकू पीसने बैठतीं। चक्की पर से उठकर लोगों के जागने से पहले पहले लोकदृष्टि बचा कर वे कई घरों में नर्मदा का पानी मटकों में भर कर पहुँचातीं। नर्मदा के पुलिनों की ऊँचाई जिसने देखी हो वही अनुमान लगा सकता है कि वहाँ से ४०-४० घड़े पानी भर कर ऊपर ले जाना कितना कठिन है। शारीरिक श्रम की यह अनोखी क्षमता बहुत अंशों में पंडितजी को भी माता से विरासत में मिली है। आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता की दृढ़ भावना के सामने जीवन में कुछ भी असंभव नहीं, माताजी का जीवन इस तथ्य का ज्वलन्त उदाहरण था।

यहाँ पिताजी की योग-सिद्धि का अल्प परिचय पा लेना भी आवश्यक है। उनके गृह-त्याग से परिवार संकट में अवश्य पड़ गया था, किन्तु परतत्त्व की सच्ची खोज में जीवन को उत्सर्ग करने वाला व्यक्ति तो ऋषि-ऋण, देवऋण आदि सभी ऋणों से मुक्त हो जाता है; किसी उत्तरदायित्व को न निभा पाना उसके लिये पाप का विषय नहीं रह जाता। पिताजी को जिन योग-सिद्धियों ने वरण किया था वे तो महान् थीं ही, किन्तु उनसे भी महान् थी उनकी निःस्पृहता और इष्टदेव में निष्ठा। उनकी सिद्धियों के चमत्कारों की कथाएँ आज भी भड़ौंच और उसके आसपास के प्रदेश में प्रचारित हैं। भयंकर रोगों को क्षण मात्र में बिना औषधि के चंगा कर देना, भूत-प्रेत-पिशाच आदि का प्रभाव मंत्रोच्चार मात्र से सदा के लिये दूर हटा देना, आशीर्वाद द्वारा बड़े-बड़े असंभव कार्य सिद्ध करा देना, ऐसी अनेकों सिद्धियाँ उनके पैरों तले लोटती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थीं और वे जीव-दया-परवश होकर उनका उपयोग भी कर लेते थे। किन्तु उनमें रम जाना या उन्हें ही लक्ष्यप्राप्ति समझना उन्होंने कभी नहीं सीखा था। स्वार्थ के लिये अथवा प्रतिष्ठाशा से उनका उपयोग करना उस योगी के लिये नितान्त त्याज्य था। इसी दृष्टि से उनकी महान् सिद्धियों की अल्पकथा का हम दर्शन करें और बड़े से बड़े प्रलोभनों को जीत लेने वाले उन ध्रुवयोगी के प्रति अपार श्रद्धा से नतमस्तक हों।

गुजरात के प्रसिद्ध योगी श्रीमान् परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री विनायक योगी महाराज उर्फ़ पूर्णानन्द महाराज एक बार पिताजी की कीर्ति सुनकर उनसे शास्त्रार्थ करने के निमित्त एवं उनकी योगशक्ति देखने के लिये उनके पास आये। पिताजी ने स्वयं मौन रह कर बालक ओंकारनाथ की देह को स्पर्शमात्र करके उन्हीं द्वारा योगिराज से शास्त्रार्थ कराया। बालक ने संस्कृत में धाराप्रवाही रूप से ऐसा शास्त्रार्थ किया मानो उन्हें वेद, उपनिषद् आदि सभी ग्रन्थ पूर्णतया कंठस्थ हों और उनका मर्म वे समझते हों। इस अनुपम सिद्धि को देखकर योगिराज चमत्कृत हो गये। पिता के हाथ का स्पर्श हटते ही बालक का वह 'ज्ञानावेश' तत्काल तिरोहित हो गया और वह नर्मदा के कंकरों में से शंकर की खोज करने में फिर से लीन हो गया। ऐसा ही अवसर एक बार फिर आया, जब बहुत बड़ी संख्या में हाथियों, घोड़ों और सोने-चाँदी की पालकियों से विभूषित एवं सैकड़ों योगी-साधुओं से आवेष्टित एक मठाधीश योगीश्वर भड़ौंच पधारे थे। तब भी पिताजी ने बालक को स्पर्श करके उसकी जिह्वा पर भगवती भारती को अधिष्ठित किया था।

उनके आशीर्वाद की अमोघता की तो कई कथाएँ हैं जिनका दिग्दर्शन मात्र ही हम यहाँ कर सकेंगे। उनकी सेवा में संलग्न रहने के कारण पंडितजी अपनी पढ़ाई के लिये पाठशाला में बहुत ही कम समय दे पाते थे। वर्ष भर में से मुश्किल से एक-डेढ़ महीना स्कूल में उपस्थित रह पाते होंगे, किन्तु पिताजी के आशीर्वाद का ऐसा प्रताप था कि कुछ भी पढ़ पाने की सुविधा न होते हुए भी पंडित जी सदा श्रेणी में प्रथम या द्वितीय स्थान पाते थे और उनकी कुशाग्र बुद्धि को देख कर परीक्षक भी दंग रह जाते थे। पिताजी के आशीर्वाद ने कितने ही निःसंतानों को संतान का वरदान दिया, कितने ही निर्धनों को धन का वैभव दिया और कितने ही महारोग पीड़ितों को निरामयता प्रदान की। अपने परिवार के लिये सिद्धि का उपयोग करना स्वयं अपने ही लिये उपयोग करने जैसा होता, इसलिये उन्होंने अपने पूर्वाश्रम की पत्नी और बालकों की निर्धनता दूर करने की कभी कल्पना तक नहीं की। उनकी ये सिद्धियाँ सदा लोक-कल्याण में ही प्रयुक्त हुईं, किन्तु उन्हें मोहित करके तनिक भी लक्ष्यच्युत कभी न कर सकीं। ऐसे निःस्पृह स्वामी को पाकर सिद्धियाँ अवश्य धन्य हुईं, किन्तु उस स्वामी की वास्तविक महत्ता तो उनसे कहीं अधिक गहन गुहा में निहित थी।

पंडितजी को सरस्वती के वरदपुत्र के रूप में वे भली-भाँति जानते थे और उनकी त्रिकालज्ञ दृष्टि ने बालक के उज्ज्वल भविष्य की झाँकी पा ली थी। कहते हैं कि जिस मिल में पंडितजी काम करते थे उसके करोड़पति मालिक ने पंडितजी की घुँघराले बालों वाली मोहक आकृति और उनके तेजस्वी मुख-मंडल से आकर्षित होकर उन्हें दत्तक लेने के लिये पिताजी के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पास बहुत ही अनुनय-विनय की और विपुल धन देनेका प्रलोभन भी दिखाया, किन्तु पिताजी ने दृढ़ता से कहा, "यह बालक किसी धनवान् का दत्तक नहीं बनेगा, यह तो माता सरस्वती का वरद्पुत्र बनकर अनगिनत लक्ष्मीपतियोंसे विपुल सन्मान पायेगा।" उनकी इस भविष्यवाणी की सत्यता आज सर्वविदित है।

पंडितजी को जन्म से ही अलौकिक मधुर आवाज़ की ईश्वरीय देन प्राप्त थी। पाठशाला में उनके कवितागान के अनोखे ढंग से शिक्षक बहुत ही प्रसन्न होते थे। रामलीला पार्टी वाले भी उनकी इस जन्मजात शक्ति का पूरा उपयोग करते थे। बचपन से ही उन्हें संगीत से अपूर्व प्रेम था और संगीत सीखने की अदम्य लालसा भी थी। गाँव में या आस-पास कहीं भी छोटे-बड़े गायक या कोई भजन-कीर्तनकारी साधु आते तो उनका कार्यक्रम सुनने के लिये किसी विघ्न-बाधा की परवाह न करते हुए पंडितजी अवश्य उपस्थित होते। संगीत सुनने अथवा सीखने की गहरी चाह पूरी करने के लिये वे सब कष्ट झेलने को तैयार रहते थे। एक बार नर्मदा के उस पार गुमानदेव नामक गाँव में एक साधु आये थे। उनके मधुर-गान को प्रशंसा सुनते ही वहाँ जाने के लिये पंडितजी की प्रबल कामना हुई और नदी पार होने के लिये पैसे के अभाव में नर्मदा का चौड़ा पट तैर कर पार करके और बाक़ी दूरी पैदल तय करके वे गीले कपड़ों से ही संगीत सुनने के लिये वहाँ जा पहुँचे। कई जगह संगीत सीखने का भी उन्होंने बहुत यत्न किया, किन्तु उस प्रदेश में योग्य गुरु मिलना असंभव था और भगवान् की योजना कुछ और ही थी। पंडितजी को सामान्य संगीत शिक्षकों के हाथों तले न डालकर उन्हें इस युग के संगीतावतार की शिष्यता प्राप्त कराना जब विधि का विधान था तब अन्यथा कैसे होता ?। दैव की ओर से अनुकूल समय आने तक वे अपने हृदय में संगीत सीखने की और अद्वितीय संगीतकार बनने की महत्वाकांक्षा सँजोये रहे और समय आने पर उनके सुनहले स्वप्न आशातीत रूप से फलीभूत हुए। यह समय आने के पूर्व पंडितजी के जीवन में एक विशेष महत्व की घटना हुई जिससे उनके जीवन ने पलटा खाया और वे साक्षात् संगीत के क्षेत्र में उतर पड़े। वह घटना इस प्रकार है।

योगी पिताजी ने सन् १६१०, विक्रम संवत् १६६७ के ज्येष्ठ मास में पूर्णिमा से ७ दिन पूर्व ही अपने महाप्रयाण की तिथि और समय की सूचना किशोर ओंकारनाथ द्वारा परिवार को दिला दी थी। इस पर किसी ने विश्वास नहीं किया और पिताजी के स्वस्थ शरीर को देखते हुए विश्वास करने जैसा था भी क्या ? किन्तु आप्त वाक्य भला अन्यथा कैसे होता ? निर्दिष्ट तिथि (पूर्णिमा) के पूर्व की रात को पूरे समय पिताजी ने अपने परम प्रिय पुत्र से केनोपनिषद्, कठोपनिषद् और गीताका पारायण कराया। सुबह होते-होते पंडितजी के चाचा, बुआ, माता और भाई भी कुटिया में उपस्थित हो गये। पारायण पूरा होते ही सबको प्रसाद बाँटा गया और ज्येष्ठ पुत्र बालकृष्ण तथा तृतीय पुत्र ओंकारनाथ को छोड़ कर और सभी को कुटिया के बाहर चले जाने का पिताजी ने आदेश दिया। तब उन्होंने एक ताम्बूल का चर्वण किया और पहले ज्येष्ठ पुत्र से पूछा कि उसे उस चर्वित ताम्बूल की प्रसादी ग्राह्य है या नहीं। बालकृष्णजी ने उत्तर दिया, "ऐसी गन्दी चीज़ कौन खाये ?" ओंकारनाथजी ने तत्काल निवेदन किया,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"पिताजी इस पर मेरा अधिकार है।" तब पिताजी ने प्रसन्न होकर वह शक्ति-संचारित प्रसादी उन्हें दी और देने से पहले बालक से कहा, "तूने मेरी बहुत सेवा की है, किन्तु अभी तू इतना छोटा है कि तुझे योग की दीक्षा देना संभव नहीं। मेरा हार्दिक आशीर्वाद है कि वाणी के बल पर तू जगत् में सर्वत्र विजयी होगा।" इतना कह कर उन्होंने पंडितजी की जिह्वा पर वाग्बीज मंत्र का आलेखन किया। बस अब उनके लिये कोई कार्य शेष न था और निर्दिष्ट समय निकट आ गया था। वे पद्मासन लगा कर बैठ गये और प्रणव का दीर्घोच्चार करके ठीक ९ बजे महाप्रयाण कर गये। बाहर बैठे हुए आत्मीयजनों के दुःखमय आश्चर्य का ठिकाना न रहा और योग के अद्भुत चमत्कारों में जिनकी आस्था न थी उन्हें यह सत्य बड़ा कठोर आघात सह कर गले उतारना पड़ा।

पिता की अन्त्येष्टि क्रिया उन्हीं के अन्तिम आदेशानुसार पंडितजी के हाथों सम्पन्न हुई और अब सभी के मन में पंडितजी के भविष्य की और उनकी शिक्षा-दीक्षा की चिन्ता प्रबल हुई। इसी बीच भड़ौंच के एक उदारचेता और निर्धनों के परम सहायक महादानी सज्जन सेठ शापुरजी मंचेरजी डूँगाजी के समक्ष पंडितजी के गान का अवसर आया और उस किशोर के गान में उन पारसी सज्जन को कुछ असाधारण विशेषता दिखाई दी। उन्होंने पंडितजी के ज्येष्ठ भ्राता पं० बालकृष्णजी को तत्काल सुझाव दिया कि महान् संगीताचार्य पं० विष्णु दिगम्बरजी के बम्बई स्थित गांधर्व महाविद्यालय में संगीत की शिक्षा के लिये पंडितजी को भर्ती कराया जाय। इस सुझाव का पंडितजी ने हृदय के समग्र उल्लास से स्वागत किया और बड़े भाई से निवेदन किया, "यदि आप मुझे संगीत की शिक्षा लेने का अवसर देंगे तो मैं इस क्षेत्र में अद्वितीय बन कर दिखाऊँगा।" सब लोगों ने यह सुझाव स्वीकार कर लिया और विद्यालय के लिये प्रस्थान की तैयारी और मार्गव्यय के निमित्त उन पारसी सज्जन ने कुछ आर्थिक सहायता भी दी।

इस प्रकार शैशवावस्था से सँजोई हुई महत्त्वाकांक्षा की ज्योति हृदय में लिये और अद्वितीय संगीतकार बनने की प्रतिज्ञा पूरी करने की वज्रोपम दृढ़ता कोमल अन्तर में छिपाये हमारे इन भावी संगीत सम्राट् ने तेरह वर्ष की आयु में आत्मीय जनों से विदा लेकर गुरुगृह के लिये प्रस्थान किया। उस दीर्घ और दुर्गम पथ के प्रवासी के पास चलते समय भला क्या संबल था? पाथेय के रूप में धनबल का पूरा अभाव था और आत्मीयजनों से बिछुड़ जाने के कारण जन-बल का भी कोई अवलम्ब न था। तो क्या वे खाली हाथों प्रवास पर निकले थे? नहीं, कदापि नहीं, उनके साथ योगिराज पिता का असीम शक्तिसम्पन्न आशीर्वाद था, पिता की अयाचक वृत्ति से जीवन में समाई हुई प्रभुनिर्भरता थी, माता-पिता से मिले हुए सुदृढ़ शरीर की कठोर श्रमशक्ति थी, प्रखर तेजस्विता थी, बुद्धि, मेधा और प्रज्ञा का अपूर्व समन्वय था, कंठमाधुर्य की अलौकिक देन थी, माता के दूध के साथ पी हुई आत्मनिर्भरता और स्वाभिमान की बद्धमूल भावना थी और कलाकार बनने के लिये एक संवेदनशील हृदय था। इतना वैभवपूर्ण पाथेय रहते भला लौकिक अभाव इस प्रवासी के मार्ग में क्या बाधा अटकाते? वह तो उन सब बाधाओं को पददलित करके अखंड आत्मविश्वास से चला जा रहा था और विजयश्री उसका स्वागत करने को आतुर खड़ी थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. संगीत का शिक्षण-काल

वम्बई के गान्धर्व महाविद्यालय में पंडितजी के पहुँचने पर गुरुदेव ने प्रारम्भिक परीक्षा के वाद परम संतोष के साथ इस होनहार विद्यार्थी को विद्यालय में प्रवेश दिया और शिक्षा प्रारम्भ हुई। विद्यालय में रहनेवाले विद्यार्थियों के रहन-सहन का, भोजन आदि का पूरा भार गुरुदेव पर ही रहता था और विद्यार्थी प्राचीन परम्परानुसार गुरुगृह में सेवा करते हुए विद्या-ग्रहण करते थे। पंडितजी को झाड़ लगाना, वर्तन माँजना और संगीत की पुस्तकों की छपाई के कार्य में योग देना—ये सव कार्य सौंपे गये थे। अपने हिस्से आये हुए प्रत्येक कार्य को वे वड़ी तत्परता से करते। प्रेस के कार्य में तो वे इतने कुशल हो गये कि कुछ दिनों वाद गुरुदेव की कई किताबें उन्हीं के हाथों छपीं। शरीर की स्वाभाविक सुदृढ़ता के कारण वे अल्प आयु में ही भारी-भारी वोझ उठाने इत्यादि के वल-सापेक्ष कार्य बड़ी आसानी से कर डालते थे। विद्यालय में झाड़ लगाने या वर्तन माँजने आदि का काम करते समय वे सीखे हुए संगीत के पाठ को मन ही मन दोहराने में अथवा अन्य किसी क्लास का पाठ चलता हो तो उसे सुन कर ग्रहण करने में अपना ध्यान लगाये रहते थे। उनकी ग्रहण शक्ति और मेधा इतनी सवल थी कि दूसरे को सिखाये हुए पाठ को भी एक बार सुन कर ही वे ठीक से याद कर लेते थे और जिन लोगों के लिये विशेषतः वह वर्ग चल रहा हो उन्हें भी वाद में पाठ को याद करने में पूरी सहायता देते थे। अपने सीखे हुए पाठों को अथक अभ्यास द्वारा पक्का करना, अन्य वर्गों के पाठों को सुन सुन कर याद करना तथा समय मिलने पर विद्यालय के पुस्तकालय की पुस्तकों का यथासंभव अध्ययन करना—यह सव वे असाधारण अध्यवसाय से करते थे। कहते हैं कि विद्यालय का पूरा पुस्तकालय उन्होंने पढ़ डाला था। इसीलिये संगीत की शिक्षा के साथ-साथ वे स्वाध्याय द्वारा वहुविषयक ज्ञान प्राप्त कर सके। संगीत के शिक्षण के लिये तपस्विता के साथ-साथ कंठमाधुर्य और प्रवल मेधा की ईश्वरीय देन तो थी ही, इसलिये ५ साल का पाठ्यक्रम उन्होंने ३ साल में ही भली भाँति पूरा कर लिया।

इस कक्षा तक पहुँचते ही पंडितजी को एक महाविघ्न का सामना करना पड़ा। उन्हें अर्थोपार्जन में लगा देने की ज्येष्ठ भ्राता की तीव्र इच्छा हुई। काठियावाड़ की एक नाटक कम्पनी वम्बई आई थी। उसे एक ऐसे छोटे पात्र की आवश्यकता थी जो मधुर गा सके। वड़े भाई ने पंडितजी को कंपनी के मालिक के सामने प्रस्तुत किया। उनके संगीत से परम संतुष्ट होकर मालिक ने ४००) रुपया मासिक वेतन पर उन्हें अपने यहाँ रख लेने की इच्छा व्यक्त की। वड़े भाई के लिये यह वहुत वड़ा आकर्षण था और वे इस मौक़े को हाथ से नहीं जाने देना चाहते थे। किन्तु शिक्षणक्रम भंग होने की आशंका पंडितजी के लिये गहरी वेदना वन गई। वे एक प्रकार के धर्मसंकट में पड़ गये, क्योंकि एक ओर कुटुम्व की निर्धनता तथा वड़े भाई की इच्छा और आज्ञा का विचार था और दूसरी ओर संगीत की उच्च साधना की उत्कट अभिलाषा थी। उन्होंने वड़े भाई को समझाने का काफ़ी यत्न किया और प्रार्थना की कि वे धन के लोभ में पड़ कर उनका (पंडितजी का) जीवन नष्ट न करें, किन्तु वड़े भाई न माने और विद्यालय से पंडितजी को मुक्त कराने का यत्न करने लगे। ऐसी अवस्था में गुरुदेव के सिवाय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंडितजी का और कोई अवलम्ब न था। इस विकट परिस्थिति में पंडितजी ने उन्हीं की शरण ली। बड़े भाई ने जब गुरुदेव से यह बात चलाई तब उन्हें उत्तर मिला, "आप ख़ुशी से अपने भाई को ले जा सकते हैं, किन्तु आपको याद होगा कि आपने नौ साल तक इस बालक को मेरे पास रखने का वचन दिया था। अब यदि बीच ही में ले जाना चाहें तो पिछले तीनों सालों का ख़र्च आपको देना होगा।" बड़े भाई इतनी रक़म भला कहाँ से लाते और इस युक्ति से गुरुदेव ने अपने होनहार शिष्य को महाविपत्ति से बचा लिया। इसके बाद वे गुरुदेव के पास संगीत की उच्चतर शिक्षा लेते रहे और ६-७ वर्ष का काल उन्होंने गुरुदेव के सान्निध्य में ही बिताया। इसी बीच उनका सुमधुर बाल-कंठ फट गया और आवाज़ फूटे मटके जैसी हो गई। गुरुदेव की आज्ञानुसार वे प्रतिदिन तड़के मन्द्र-साधना के लिये गुरुदेव के सोने के कमरे के बाहर बैठते और दो-तीन घंटे तक सुर भरते। उसी मन्द्र-साधना के प्रताप से उनकी आवाज़ में मेघ-सदृश गंभीरता, तीनों स्थानों में अनायास घूमने की क्षमता, भावानुकूलता, लोच आदि अनेकों गुण प्रतिष्ठित हुए। आवाज़ साधने के इस काल में पंडितजी ने मृदंग का भी विशेष अभ्यास किया, यहाँ तक कि वे मृदंग के 'सोलो' कार्यक्रम देते थे। इस प्रकार ६-७ वर्ष तक उनका प्रत्यक्ष शिक्षण चला और उसके बाद गुरुदेव ने उन्हें सन् १६१६ में लाहौर के गांधर्व महाविद्यालय का प्रिंसिपल बना कर वहाँ भेज दिया और सीखी हुई संगीत विद्या का ख़ूब डट कर अभ्यास करने का आदेश दिया। लाहौर में पंडितजी को विद्यालय का ख़र्च निभाने के लिये ट्यूशन करना, विद्यालय के वर्ग चलाना और अन्य व्यवस्था करना तथा अपना अभ्यास चलाना—यह सभी कुछ निभाना पड़ता था। कहते हैं कि उन दिनों वे २४ घंटों में से केवल ६ घंटे निद्रा, स्नान आहार आदि सभी देह संबंधी कार्यों के लिये देते थे और बाक़ी १८ घंटे संगीत सिखाने और अपना अभ्यास करने में बिताते थे। इन दिनों वे ६-६ घंटे तक एक आसन से अविरत अभ्यास करते थे। अभ्यास के समय उनका बायाँ हाथ ही तबलची बन जाता जो डुग्गी पर ठेका बजा कर ताल की संगत करता। आज के विद्यार्थियों को तो अखंड तप की यह कथा शायद कल्पना ही जान पड़े, किन्तु यह परम सत्य है जो आज भी पुकार-पुकार के कह रहा है कि सतत महातप से ही सिद्धि पाई जा सकती है। ऐसी महातप की कथाएँ वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिये सदा आलोकस्तम्भ का कार्य देंगी, इसमें संदेह नहीं।

१६१६ से १६१६ तक यही क्रम चलता रहा। बीच-बीच में कभी-कभी विशेष अवसरों पर पंडितजी का गुरुदेव के पास बम्बई जाना होता था और तब कुछ नया शिक्षण लेने का सुयोग मिल जाता था। लाहौर में कठोर साधना द्वारा पंडितजी ने जो सिद्धि पाई थी उसे देख कर गुरुदेव बहुत प्रसन्न होते थे और बम्बई में सार्वजनिक उत्सवों में या सम्मेलनों में पंडितजी की तैयारी की भूरि-भूरि सराहना होती थी।

४ वर्ष के इस काल में दो घटनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। सन् १६१८ ई० में बड़ौदा रियासत के राज गायक श्री मौला बख़्श के ज्येष्ठ पुत्र प्रोफ़ेसर मुर्तुज़ा ख़ाँ जो उस समय बड़ौदा के राजकीय संगीत महाविद्यालय के अध्यक्ष थे, उनकी परीक्षा के लिये राज्य की ओर से जो समिति नियुक्त हुई थी उसमें गुरुदेव विष्णु दिगम्बरजी, पं० भातखण्डे, बड़ौदा के तत्कालीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दीवान सर मनुभाई मेहता और श्री नरसिंहराव दिवेटिया के साथ पं० ओंकारनाथजी की भी नियुक्ति हुई थी। कार्यवश गुरुदेव और भातखण्डेजी के न आ सकने के कारण परीक्षा का सारा बोझ पंडितजी को ही उठाना पड़ा और उतनी छोटी आयु में भी आपने यह कार्य इतनी सफलता पूर्वक सम्पन्न किया कि रियासत के दीवान सर मनुभाई मेहता और महाराजा सायजीराव गायकवाड़ बहुत ही सन्तुष्ट हुए थे।

दूसरी घटना इस प्रकार है। सन् १९१८ में जालन्धर के हरवल्लभ के वार्षिक मेले में पूना के भारत प्रसिद्ध संगीताचार्य पं० भास्कर राव बखले उपस्थित थे और पंडितजी भी उस महान् संगीत सम्मेलन में भाग लेने गये थे। ४ दिन तक सुबह शाम पंडितजी और भास्कररावजी का एक दूसरे के पहले या बाद में गाना चलता रहा। भास्कररावजी जैसे लब्धप्रतिष्ठ और वयस्क कलाकार के समक्ष नवयुवक पंडितजी का अनोखा कला प्रदर्शन एक अनूठा वातावरण खड़ा करता रहा। अन्य गायक और श्रोताजन मुग्ध होकर दोनों को जी भर कर सुनते रहे। किसी को इसमें स्पर्धा के दर्शन हुए, किसी ने इसे मुक़ाबला समझा और कइयों ने दोनोंके ही गुण की सराहनां की। अन्तिम दिन पंडितजी का गाना पूरा होते ही उदारचेता स्व० पं० भास्कररावजी ने मंच पर ही उन्हें गले से लगा लिया और गद्गद् कंठ से उनकी कला की भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा, "अब मैं तुम्हारे ऊपर बैठकर नहीं गाऊँगा।" जनता के लिये यह पंडितजी की विजय का स्पष्ट दर्शन था और इसलिये तत्काल उन्हें विजयमाला पहनाई जाने लगी, किन्तु भास्करराव जी के वयोवार्धक्य की मर्यादा का पालन करने के लिये पंडितजी ने तत्काल ही विजयमाला उन्हें अर्पण की और कहा, "इस पर आप ही का अधिकार है।" पंडितजी के इस मर्यादा पालन और विनयशीलता का जनता पर अद्भुत असर हुआ और मंच पर सिक्कों तथा गहनों की वर्षा-सी होने लगी। पंडितजी के प्रति जनता के असीम स्नेह की यह अभिव्यक्ति मात्र थी। वाल्मीकि रामायण में जैसे लिखा है कि लवकुश रामायण का ज्ञान करते हुए जब अयोध्या जा रहे थे तब उनकी मनमोहक बाल आकृति और मधुर कंठ से प्रभावित होकर पथ के ग्रामवासी उन्हें नाना प्रकार की भेंट देते थे, कुछ ऐसा ही दृश्य उक्त सम्मेलन में उस अवसर पर बन गया था। वहाँ उपस्थित जनता में से अभी जो जीवित हैं वे आज भी उस दिन के पंडितजी के चमत्कारपूर्ण गान और उस अवसर की स्नेह-सिक्तता को आर्द्र हृदय से याद करते हैं।

सन् १९२० के आरम्भ में पण्डितजी ने लाहौर और गुरुगृह दोनों से विदा ली। इसी समयकी एक घटना उनके चरित्र का हमें विशेष दर्शन कराती है। गुरुदेव ने उसके प्रायः एक वर्ष पूर्व बम्बई में एक विशेष समारोह करके उच्च शिक्षा प्राप्त कुछ विद्यार्थियों को 'संगीत प्रवीण' की उच्चतम उपाधि प्रदान की थी। उन विद्यार्थियों में अधिकांश पण्डितजी के सहाध्यायी थे और कुछेक तो उनके बाद में आये हुए निम्नश्रेणी के भी थे। पण्डितजी उस अवसर पर लाहौर ही में थे और किसी अज्ञात कारणवश उन्हें उक्त समारोह में पदवी प्रदान करना छूट गया था। कुछ समय बाद पं० विष्णु दिगम्बरजी अपने गुरुदेव पं० बालकृष्ण बुआ को लेकर लाहौर पधारे और एक दिन बग्घी में घूमते समय उन्होंने पंडितजी से यह चर्चा चलाई कि पदवी प्रदान के अवसर पर पण्डितजी लाहौर में थे, इसलिये उनकी अनुपस्थिति में उन्हें पदवी देना रह गया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था, अतः अब गुरुदेवकी इच्छा थी कि एक विशेष समारोह करके उन्हें भी पदवी दी जाय। गुरुदेवके ऐसा कहनेपर पंडितजीने कहा- "यह आपका परम अनुग्रह है, कृपा है, किन्तु समय बीत चुका है, इसलिये अब उसकी अपेक्षा नहीं है।" किन्तु गुरुदेवके बार-बार आग्रह करनेपर ओजस्वी शिष्यने जो उत्तर दिया वह उनके दृढ़ आत्म-विश्वासका द्योतक है। उन्होंने कहा, "जब आप अपने गुरुदेव पं० बालकृष्ण बुआसे पूरा शिक्षण लेकर विदा हुए थे, तब उन्होंने आपको कोई पदवी नहीं दी थी, किन्तु उनकी विद्याका इतना प्रभाव था कि आप सैकड़ों 'संगीत-प्रवीण' उत्पन्न कर सके। वैसे ही मुझे भी अपने गुरुदेवकी ओरसे इतनी विद्या मिली है कि अब मुझे पदवीकी अपेक्षा नहीं। आपके आशीर्वाद से मैं भी अनेकोंको 'संगीत-प्रवीण' बना सकूँगा। इस उत्तरसे गुरुदेव अतिशय प्रसन्न हुए और गद्‌गद् होकर बोले, "तुमसे मुझे ऐसे ही उत्तरकी आशा थी। पदवी या डिग्रीका लोभ तो उन्हींको होता है जो अपनी विद्याके साक्षात् बलपर नहीं, अपितु डिग्रीके प्रदर्शन द्वारा जीविकोपार्जन करना चाहते हैं।" डिग्रियोंको अतिशय महत्व देने-वाले आजके इस युगमें पंडितजीका यह उदाहरण उनकी असाधारण प्रतिभाका द्योतक तो है ही, किन्तु साथ ही प्रेरक भी है। वास्तविक योग्यता और डिग्री इन दोनोंके बीच कितना लम्बा चौड़ा तारतम्य रह सकता है, यह एक ही उदाहरणसे समझमें आ जायगा। साथ ही यह सत्य भी ध्यान देने योग्य है कि असाधारण योग्यताको समाजमें उचित स्थान पानेके लिये डिग्री जैसे किसी दुर्बल अवलम्बकी आवश्यकता नहीं होती।

४. गुरुगृहसे प्रत्यागमन और गृहस्थाश्रममें प्रवेश

इस प्रकार प्रायः ६ वर्षका कठोर विद्यार्थी जीवन गुरुगृहमें बिताकर गुरुदेवकी दी हुई विद्याको सतत अभ्यास द्वारा आत्मसात् करके, उनके हार्दिक आशीर्वादका सम्बल लेकर और अद्वितीय कलाकार बननेकी प्रतिज्ञा पूरी करके उज्ज्वल भविष्यकी आशाएँ लिये हुए वे घर लौटे। असहयोग आन्दोलनका वह चरमकाल था, पंडितजी भी उस समय देशकी पुकारको अनसुनी न कर सके और स्वतन्त्रता संग्राममें वीर सेनानीकी भाँति कूद पड़े। इसके कुछ काल पश्चात् उनमें योग-साधनाके संस्कार जागृत हुए और अपने बालसाथी श्री अम्बुभाई पुराणीके साथ वे नर्मदाके तटपर कुटिया बाँधकर साधनामें संलग्न हो गये। किन्तु उनका भावना-प्रधान हृदय योगकी अपेक्षा भक्तिके ही अधिक अनुकूल था और है। इसलिये योगाभ्यासके उस कालमें भी वे तम्बूरा लेकर घंटों रोते रहते थे। यों त्राटक आदिकी सामान्य सिद्धियाँ योगमें भी उन्हें प्राप्त हो गई थीं, जिनसे वे अपनी स्थिर दृष्टि द्वारा अनेक रोगियोंको निरामय कर देते थे, किन्तु इन छोटी मोटी क्रियाओंसे उनके भक्ति-प्रवण हृदयको तृप्ति नहीं हो पाती थी। इसी बीच इन दोनों साथियों ने योगी श्री अरविन्दसे पत्र व्यवहार किया। दोनोंके फ़ोटो उन्हें भेजे गये और उन्होंने प्रसन्न-चित्तसे दोनोंको पांडीचेरीके आश्रममें चले आनेका आग्रह लिख भेजा। किन्तु श्री अरविन्दके समक्ष पूर्ण आत्म-समर्पण करना आश्रममें प्रवेशकी शर्त थी। इस शर्तको तत्काल स्वीकार करना पंडितजीके लिये संभव न हुआ। उन्होंने उत्तर दिया, "मैं कोरा काग़ज़ नहीं हूँ। मुझपर पिताके बहुत गहरे संस्कार हैं इसलिये सहसा आत्म-समर्पण नहीं कर सकता। जब श्री अरविन्दका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रभाव मेरी आत्मामें दृढ़ हो जाय तभी वैसा कर सकूँगा।" अतः श्री पुराणीजी तो आश्रममें चले गये और पंडितजी पुनः घर लौट आये।

इसी समय माता और बड़े भाई ने पंडितजी से विवाह का आग्रह शुरू किया और जून १९२२ में सूरत निवासी सेठ प्रह्लादजी दलसुखराम भट्ट की कन्या सौभाग्याकांक्षिणी इन्दिरा देवी से उनका पाणि ग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ। गुरु गृह से लौटने के बाद अभी तक विविध प्रवृत्तियों के कारण अर्थोपार्जन की ओर पंडितजी कुछ विशेष ध्यान नहीं दे पाये थे, इसलिये उनकी आर्थिक स्थिति बिल्कुल सुदृढ़ नहीं थी। ऐसी अवस्था में इतने बड़े सम्पन्न परिवार की कन्या से संबंध होना भी एक आश्चर्यजनक घटना है, जिसका थोड़ा सा ब्योरा इस प्रकार है। पंडितजी की ज्ञाति (उनेवाल ब्राह्मण बिरादरी) का एक बृहत् सम्मेलन सिद्धपुर (मातृ गया) में हुआ था। उस सम्मेलन में पंडितजी ने एक गवेषणापूर्ण लेख पढ़ा जिससे सारी उपस्थित जनता उनकी विद्वत्ता से बहुत प्रभावित हुई। इस सम्मेलन में सेठ प्रह्लादजी भाई भी उपस्थित थे। पंडितजी की इस विद्वत्ता, संस्कारिता और प्रतिभा को देख कर उनके उज्ज्वल भविष्य का सेठजी को मानो साक्षात् दर्शन हो गया और उन्होंने तत्काल अपनी कन्या के सुयोग्य वर के रूप में मन ही मन उनका चुनाव कर लिया। अवसर पाकर उन्होंने पंडितजी से इस सम्बन्ध में चर्चा की और बड़े आग्रह से उनकी स्वीकृति पा ली। सरस्वती के इस वरदपुत्र को लक्ष्मी का अभाव न रहेगा ऐसा वे दृढ़ रूप से मान रहे थे और उनकी मान्यता अक्षरशः सत्य भी निकली।

५. गृहस्थ जीवन और नेपाल यात्राएँ

गृहस्थ जीवन अपनाने के बाद वे पुनः भड़ौच में बस गये और संगीत के जलसों द्वारा अर्थोपार्जन करने में जुट गये। इन्हीं दिनों गान्धर्व निकेतन नाम के एक संगीत विद्यालय की भी उन्होंने भड़ौच में स्थापना की। बड़े भाई का परिवार, छोटे भाई और माता इन सबका भार उन्हीं पर था क्योंकि बड़े भाई वैद्यराज होने पर भी अपने उद्यम शैथिल्य के कारण कोई विशेष कमाई नहीं करते थे। जलसों द्वारा जो आय होती थी उससे कुटुम्ब का निर्वाह होता था, किन्तु विवाह के अवसर पर जो बड़ी रक़म कर्ज़-लेनी पड़ी थी उसे चुकाने की भी चिन्ता लगी हुई थी और उसके लिए विशेष प्रयास आवश्यक था। नेपाल के महाराजा की संगीत-प्रेमिता और संगीतकारों के प्रति उदारता की बहुत सी कहानियाँ उन दिनों प्रचलित थीं। नेपाल दरबार में ताज ख़ाँ और तानरस ख़ाँ को जो विपुल सम्मान मिला था उसकी कथा भी उन दिनों प्रचार में थी। महाराज श्री ३ वीर शमशेर जंगबहादुर राणा ने ४ दिन में ४ लाख रुपये व्यय करके भारत भर के बड़े बड़े गायक वादकों का जो बृहत् सम्मेलन बुलाया था उसकी कहानी भी पंडित जी ने सुन रखी थी। साथ ही पंडितजी ने अपने पितामह की नेपाल यात्रा के बहुत से संस्मरण पिताजी से बचपन में सुन रखे थे जिनके कारण उस सुदूर प्रदेश की यात्रा करने की साध चिरकाल से थी। इसलिए नेपाल दरबार में अपने अपूर्व गुण प्रदर्शन द्वारा सम्मान और धन प्राप्त करने की आशा से और जिस प्रदेश के साथ असंख्य कहानियाँ जुड़ी हुई थीं उस कल्पना के लोक का वास्तविक दर्शन करने की अभिलाषा से प्रेरित होकर सन्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१९२३-२४ में पंडित जी ने नेपाल यात्रा की तैयारी शुरू की। सन् १९१८ में परीक्षा समिति के सदस्य के रूप में बड़ौदा रियासत के दीवान सर मनुभाई मेहता से जो परिचय हुआ था उसी के आधार पर उनसे नेपाल के महाराजा के नाम एक परिचय-पत्र लेकर छोटे भाई पं० रमेशचन्द्र के साथ उन्होंने उस दीर्घ और दुर्गम यात्रा के लिए प्रस्थान किया। पं० रमेशचन्द्र तबलातरंग, जलतरंग, वायलिन वाद्यों के वादन में नितान्त प्रवीण थे। मार्ग की विकटता की बहुत सी भयंकर बातें सुन रखी थीं। बीहड़ वनों में शेर, भालू इत्यादि हिंसक जन्तुओं का बाहुल्य, नरबलि की प्रथा इत्यादि कई कँपा देने वाली बातें प्रचलित थीं। इन सबकी परवाह छोड़ कर असीम साहस का बल लेकर वे अग्रसर हुए। रक्सौल से थानकोट तक ७२ मील के बीहड़ वन प्रदेश की पैदल यात्रा इन दोनों भाइयों ने प्रायः छः दिन में पूरी की। रास्ते में खाद्य पदार्थों का बिल्कुल अभाव था, क्योंकि साथ के कुली लोग मांसाहारी थे और अपने अनुकूल भोजन बनाने की इन लोगों के पास कोई व्यवस्था न थी। भुने चने, गुड़ और घी केवल इन्हीं पर निर्वाह करना पड़ता था। पहाड़ों की चढ़ाई भी बहुत ही विकट थी जिससे अपार थकान हो आती थी। जब वे लोग चीसापानीगढ़ी नाम के ९ हजार फ़ीट ऊँचे पहाड़ की चोटी पर पहुँचे तो वहाँ से अचानक गौरीशंकर (माउण्ट ऐवरेस्ट) के दर्शन हुए। गौरीशंकर की चोटी प्रायः बादलों से ढकी रहती है, उसके दर्शन दुर्लभ माने जाते हैं। किन्तु इतनी सुलभता से जब उसके दर्शन हुए तभी पंडितजी ने छोटे भाई से कहा, "रमेश, देखो यह अपनी सफलता का पहला लक्षण है।" थानकोट की तराई में पहुँच कर एक दो दिन तक विश्राम करके और कुछ भोजन आदि पाकर सशक्त बन कर उन दोनों ने नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में प्रवेश किया। काठमाण्डू की सीमा पर एक विशेष रेखा बनी हुई है। उस रेखा के भीतर इन दोनों भाइयों के पहला क़दम रखते ही तोप दगी। ठीक १२ बजे का समय था और दैवयोग से इन लोगों ने भी उसी क्षण सीमा के भीतर पैर रखा था। तोप का दगना सुनते ही पंडितजी ने फिर कहा, "देखो रमेश, यह तोप हमारी सफलता का निशान है।"

श्री० ३ हिज़ हाइनेस महाराजा चंद्र शमशेर जंग बहादुर के राजदरबार में सर मनुभाई मेहता का पत्र दिखाते ही सरकारी धर्मशाला में रहने का तत्काल प्रबन्ध हो गया और ८ प्रहरी सेवा में नियुक्त कर दिये गये। दरबार में पंडितजी का बहुत ही भव्य गायन हुआ, जिससे प्रसन्न होकर महाराजा साहब ने ५ हज़ार रुपयों का एक छोटा सा मंचाकार ढेर लगवा कर, उस पर गलीचा बिछवा कर और पंडितजी को उस पर बिठाकर वह धनराशि उन्हें प्रदान की। राजदरबार में पंडितजी का अपूर्व स्वागत हुआ और उनके गुण की सभी ने शतशः सराहना की। राजघराने में अन्यत्र भी कई जगह उनके कार्यक्रम हुए। इन्हीं दिनों एक बार शाम के समय बगीचे में टहलते हुए महाराजा साहब ने पंडितजी के कन्धे पर हाथ रखकर उनसे राजगायक का पद स्वीकार करने का आग्रह किया और तीन हज़ार रुपये मासिक या आवश्यकता हो तो उससे भी कुछ अधिक, पाँच हज़ार तक का वेतन देने की बात कही। पंडितजी ने उत्तर दिया, "महाराजा साहब ! इस समय आप जिस स्नेह से, जिस सम्मान से मेरे कन्धे पर हाथ रखकर बातचीत कर रहे हैं, वे सब भाव उस समय न रहेंगे जब मैं आपका दरबारी गायक बन जाऊँगा। तब तो मुझे आपकी सलामी भरनी होगी और वह काम यह ब्राह्मण कलाकार नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर सकेगा।" इस उत्तर से महाराजा साहब बहुत ही प्रभावित हुए और पंडितजी को सच्चा ब्राह्मण कलाकार कह कर उनकी जी भर कर प्रशंसा करने लगे।

यात्रा की पूरी सफलता पाकर अब घर लौटने का समय आया। माता के सामने रुपयों का बड़ा सा ढेर लगाने की साध थी। इसलिये महाराजा से मिले हुए धन को तबलातरंग के तबलों की पुड़ियाँ खोल कर उसमें भरा गया और इस प्रकार बन्द किया गया जिससे कोई कुछ न जान सके। लौटते समय पूरा राजकीय प्रबंध था, अतः कष्ट की कोई संभावना ही नहीं थी।

नेपाल यात्रा की यह कहानी रोमांचकारी घटनाओं से भरी हुई है, जिन सबका उल्लेख करना यहाँ संभव नहीं। किन्तु पंडितजी के चरित्र के जिस विशेष पहलू पर इस कहानी से बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है, उसका स्मरण आवश्यक है। अदम्य साहस, महान् विघ्न बाधाओं की उपेक्षा, अविचल निश्चय, सफलता की दृढ़ आशावादिता और आत्मविश्वास का प्रखर तेज—ये कुछेक गुण जो उनके चरित्र में कूट-कूटकर भरे हुए हैं, उनकी भव्य झाँकी इस यात्रा-गाथा में मिलती है।

घर लौट कर माता के चरणों में रुपयों का ढेर किया गया और उन्हें आश्वासन दिया गया,—"अब तुम ऋण से मुक्त हो गई।" गृहस्थजीवन अपनाने पर भी वे उसके सभी आकर्षणों से प्रायः मुक्त रहकर संगीत की साधना और शास्त्राध्ययन में तल्लीन रहते थे। एक ओर वे घंटों तक तम्बूरा लेकर राग-रागिनियों के स्वरों में, उनकी स्वरमय स्थूल देह में उनके भावमय रूप को खोजते थे, उनके पुरुषत्व-स्त्रीत्व, कठोरता-कोमलता, उद्दामता-करुणा इत्यादि का सूक्ष्म दर्शन करने का यत्न करते थे और दूसरी ओर भरतादि प्राचीन शास्त्रकारों के सिद्धान्तों का मर्म समझने और आज के लक्ष्य के साथ उनका संबंध जोड़ने के प्रयत्न में सतत संलग्न रहते थे। रागों की भाव-साधना वे अपने बँगले के बगीचे में एकान्त में किया करते थे और उसके अतिरिक्त अवकाश में शास्त्राध्ययन करते थे। जब भी संभव होता वे चर्चा के लिये अपने गुरुबंधु पं० नारायण मोरेश्वर खरे (गाँधीजी के आश्रमवासी) का साथ पा लेते थे। उन दोनों को शास्त्राध्ययन में तीव्र रुचि थी और 'समानशीलव्यसनेषु सख्यम्'—इस उक्ति के अनुसार दोनों में दृढ़ मैत्री थी। इस प्रकार दोहरी साधना चालू थी, अर्थोपार्जन के लिये जलसों में भी जाना पड़ता था और विद्यालय में संगीत सिखाने का काम भी साथ-साथ चलता था।

संगीत से ओतप्रोत इस जीवन का एक और भी पहलू था। कांग्रेस के कार्य में वे काफ़ी भाग लेते थे और इसी कारण भड़ौंच जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष तथा गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य चुने गये थे। इसके बाद नगरवासियों के आग्रह से भड़ौंच म्यूनिसिपैलिटी की सदस्यता भी उन्होंने स्वीकार की थी।

वे बहुधा कहा करते हैं कि संगीत की दोहरी साधना में उन्होंने अपने आपको गृहस्थ जीवन के आरम्भ से ही इतना अधिक लवलीन कर लिया था कि यौवन-सुलभ आकर्षणों से वे प्रायः अलिप्त से रहते थे। साधना की इस तल्लीनता में उनकी पत्नी का उन्हें जो मौन समर्थन प्राप्त था, उसे वे बहुधा करुणार्द्र हृदय से याद किया करते हैं। संगीत जगत् को पंडितजी के रूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

में जो महान् विभूति प्राप्त हुई, उसके निर्माण में उनकी स्वर्गीया पत्नी का जो मूक योगदान रहा है, उसे स्मरण करके उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना आज हमारा परम पुनीत कर्तव्य है।

प्रथम नेपाल यात्रा के पश्चात् सन् १९२६-२७ में पुनः पंडितजी का नेपाल जाना हुआ, किन्तु इस वार संगीत संबंधी कोई कार्यक्रम नहीं था। वात ऐसी थी कि वंबई के एक बड़े सेठ के पास रूस के ज़ार का एक २८ कैरट का बहुमूल्य गुलाबी रंग का हीरा था। किसी साधु के जाल में फँस कर वे सेठ उस हीरे को वेच डालना चाहते थे और भारत भर में उतने बहुमूल्य हीरे का कोई ग्राहक न मिलेगा, इसलिये नेपाल के महाराजा के पास उसे वेचने का प्रवन्ध करना चाहते थे। पंडितजी को प्रथम नेपाल यात्रा का अनुभव प्राप्त था और वहाँ के राजघराने में उनका घनिष्ठ परिचय था, इस दृष्टि से उन्हें सर्वोत्तम मध्यस्थ समझ कर उस सेठ ने नेपाल भेजा। इस वार इसी सिलसिले में पंडितजी को जवाहरात की परख की शिक्षा सहज ही मिली और नेपाल के ख़ज़ाने में अनेकों बहुमूल्य रत्नों को देखने का मौक़ा मिला। कहा जाता है कि नाना साहब पेशवा ने जब अपने परिवार को सुरक्षा के निमित्त नेपाल भेजा था, तब गौरीशंकर नाम के दो बहुमूल्य हीरे नेपाल महाराजा को परिवार की सुरक्षा के वदले में भेंट में भेजे थे। यह वात पंडितजी ने बचपन से ही पिता से सुन रखी थी और इस वार उन दो हीरों को देखने का भी उन्हें अवसर मिला।

सन् १९३० में महाराजा श्री० ३ भीमशमशेर जंगबहादुर राणा के यहाँ विवाहोत्सव पर विशेष निमंत्रण पाकर पंडितजी ने पुनः नेपाल यात्रा की। इस बार की यात्रा प्रथम यात्रा जैसी कष्टपूर्ण नहीं थी। उस अवसर पर महाराजा वीर शमशेर जंगवहादुर राणा, जिनकी वंश-परंपरा में संगीत की शिक्षा भली भाँति घुली हुई थी उनके पौत्र मेजर जनरल श्री० लीला शमशेर जंगवहादुर राणा ने स्वयं अपने प्रासाद में पंडितजी के ठहरने का प्रबंध किया था। उन्हीं दिनों पं० विष्णु दिगम्बरजी भी तीर्थयात्रा के निमित्त नेपाल पधारे हुए थे। इस वार एक विशेष घटना घटी, जिसने नेपाल में पंडितजी की कीर्ति में चार चाँद लगा दिये।

नेपाल के दरवारी गवैये पं० बालाप्रसाद ने उन्हीं दिनों अपने घर पर गवैयों की एक सभा सी बुलाई और वहाँ गुरुदेव पं० विष्णु दिगम्बरजी और पं० ओंकारनाथजी के लिये सबके वीच अभद्र भाषा का प्रयोग किया, गुरुदेव या पंडिराजी कोई भी वहाँ उपस्थित न थे, किन्तु राजगायक ने जान बूझ कर द्वेष के कारण अपने एक नौकर का नाम 'ओंकार' रख कर कह डाला, 'ओंकारनाथ जैसे तो मेरे यहाँ चिलम भरते हैं।' उनके इस द्वेषपूर्ण उद्गार की भनक महाराजा के कान में भी पड़ी और उन्होंने अगले ही दिन उस राजगायक के साथ भरी सभा में पंडितजी का मुक़ाबला कराने की ठानी। अपने दरवारी गायक की इस अभद्रता से वे बहुत कुपित हुए थे और सार्वजनिक रूप से स्वयं उसका निराकरण करने के लिये उन्होंने मुक़ाबले का साधन अपनाया था। उस दिन जब पंडितजी राजकीय निवासस्थान से दरवार में जाने लगे तब लीला शमशेर जंगवहादुर राणा की माता ने सामने से फलों का टोकरा रखवा कर, शकुन मना कर उन्हें विदा दी थी जिससे वे विजयी होकर लौटें। राजमाता का पंडितजी पर इतना वात्सल्य था कि वे उन्हें अपना ज्येष्ठ पुत्र मान कर लाड से 'ओंकार शमशेर' बुलाया करती थीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यों तो मुक़ाबले का कोई प्रश्न ही नहीं था, क्योंकि जहाँ किसी प्रकार की समानता न हो वहाँ मुक़ाबला कैसा ? किन्तु फिर भी औपचारिक रूप से मुक़ाबला हुआ और पंडितजी पूर्ण विजयी घोषित किये गये। तब वहाँ की दरबारी रीति के अनुसार महाराजा ने स्वयं अपने हाथों पंडितजी को विजय-माला पहनाई और दुशाला ओढ़ाया। इसके बाद से तो पंडितजी नेपाल में जहाँ भी जाते उन्हें सैनिक सलामी दी जाती और मोटर में घूमने का राजकीय अधिकार भी उन्हें प्राप्त हो गया। (नेपाल में राज-परिवार के अतिरिक्त कोई भी मोटर में नहीं घूम सकते।) अपने सुपुत्र का यह राजकीय सम्मान देख कर माता सरस्वती बलैयाँ लेती होंगी कि कहीं उसे नज़र न लग जाय।

उस दिन का दरबार भंग होने के बाद पंडितजी सीधे राजकीय धर्मशाला में गुरुदेव के पास पहुँचे और विजय के दोनों चिह्न माला और दुशाला उनके चरणों पर धर दिये। गुरुदेव ने हर्ष-विभोर होकर उन्हें गले से लगा लिया और भूरि भूरि प्रशंसा के साथ नितान्त निगूढ़ अन्तःकरण से निःसृत आशीर्वाद-धारा से उनका अभिषेक किया। अपार आनन्द से गद्गद् होकर उन्होंने अपने हाथों फिर से वही माला पंडितजी को पहनाई और दुशाला ओढ़ाकर अपने स्नेह-विह्वल नयनों को तृप्त किया। इस बार के नेपाल प्रवास में गुरुदेव की अस्वस्थता में उनकी सेवा-परिचर्या करने का पंडितजी को अन्तिम अवसर मिला।

पहली और तीसरी नेपाल यात्राओं में पंडितजी ने अपने अनुपम संगीत द्वारा भारतीय संगीत का, अपने गुरुदेव का और स्वयं अपना जो गौरव बढ़ाया उसका अल्प दर्शन हमने किया। इधर भारत में भी सभी प्रदेशों के संगीत सम्मेलनों में, राज-दरबारों में विशेष अवसरों पर एवं नाना प्रकार के उत्सवों में वे भाग लेते रहे और सभी जगह गुणीजनों की ओर से विपुल सराहना और सामान्य जनता की ओर से श्रद्धा और स्नेह पाते रहे। उनकी कीर्तिलता का सौरभ अल्पकाल में ही देश भर में व्याप्त हो गया। सन् १९२७ में उन्होंने दक्षिण में मैसूर, बंगलौर, हैदराबाद इत्यादि महानगरों का दौरा किया और वहाँ के प्रतिष्ठित संगीताचार्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया। उनकी इस महती सफलता और जनमानस पर उनका बढ़ता हुआ अधिकार देख कर उनके गुरुदेव को कितना निःसीम हर्ष होता होगा उसकी कुछ झलक पाने के लिये एक उदाहरण काफ़ी होगा।

एक बार सन् १९२६ में हैदराबाद सिंध की एक कान्फ़रेन्स में गुरुदेव ने तार देकर उन्हें आमंत्रित किया। कान्फ़रेन्स में कुछ बार पंडितजी का गान हुआ, किन्तु कुछ ऐसा ही संयोग बनता था कि गान के समय गुरुदेव की उपस्थिति संभव न हो पाती थी। पंडितजी की गहरी साध थी कि गुरुदेव की दी हुई विद्या को उन्होंने अभ्यास द्वारा जिस रूप में बढ़ाया था, उसे उनके समक्ष निवेदित करते और उनका आशीर्वाद तथा साधुवाद प्राप्त करते। आख़िर एक दिन वह साध पूरी हुई और गुरुदेव के समक्ष ही उनका कार्यक्रम शुरू हुआ। कान्फ़रेन्स का वह आख़िरी दिन था और पंडितजी के गान के बाद गुरुदेव का ही अन्तिम कार्यक्रम था। गान आरम्भ करने के पूर्व पंडितजी ने गुरुदेव के चरण छुए और यह याचना की "आज मेरे लिये समय का बन्धन न रखा जाय।" गुरुदेव की ओर से सहर्ष स्वीकृति मिली और गान आरम्भ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुआ। मालकौंस का 'पीर न जानी' यह ख्याल ही पंडितजी ने प्रायः २ घंटे तक गाया और ऐसा गाया कि एक अलौकिक वातावरण खड़ा हो गया जिसमें सभी श्रोता आत्मविस्मृत हो गये। गुरुदेव एक-एक खटके पर और एक-एक तिहाई पर 'वाह-वाह' के हार्दिक उद्‌गारों से प्रोत्साहन दे रहे थे और पंडितजी शीश नवा कर उस प्रोत्साहन को हृदय में भर कर पल-पल नवायमान उत्साह से संगीत की धारा बहा रहे थे। गान जब पूरा हुआ तब गुरुदेव ने मंच पर आकर आनंद विभोर होकर उन्हें गले से लगा लिया और भरी सभा में कहा, "'शिष्यादिच्छेत् पराजयम्' का आदर्श आज मैंने पा लिया। अब ये गा चुके हैं, जनता समझ ले कि मैं ही गाया हूँ। इनके ऊपर अब मैं नहीं गाऊँगा।" आधी रात के समय सभा विसर्जित हुई और सभी लोग अपने निवासस्थान को चले गये। अगले दिन प्रातः पंडितजी गुरुदेव का दर्शन करने गये तो बाहर से ही गुरुभाइयों ने बताया कि गुरुदेव रात भर उन्हें याद करते रहे थे और तब भी उनकी ही राह देख रहे थे। पहले तो पंडितजी को शिष्य-सुलभ भावना से यह आशंका हो आई कि उनके इतना खुल कर गाने से कहीं गुरुदेव असंतुष्ट तो नहीं हो गये? किन्तु जैसे ही वे गुरुदेव के सामने पहुँचे और गुरुदेव ने उन्हें स्नेहातिरेक से अपने अंक में भर लिया और आनन्दाश्रुओं से उनका अभिषेक किया, वैसे ही सब आशंकाएँ तिरोहित हो गईं। गायकी के एक-एक अंग को लेकर गुरुदेव जी भर कर प्रशंसा कर रहे थे और पंडितजी के गान में स्वयं अपनी गायकी का हूबहू प्रतिबिम्ब देखकर आनन्द-विह्वल हो रहे थे।

सन् १९३१ में २१ अगस्त को गुरुदेव संगीतोद्धार की अपनी अवतार-लीला समाप्त करके इस धराधाम को त्याग गये। इस दुःखद समाचार को पाकर पंडितजी की अन्तर्वेदना जिन शब्दों के रूप में वह निकली थी वे आज भी उतने ही सजीव हैं। उनका अल्पश्रवण करके हम भी धन्य हो जायँ—

"उसके बाद की दर्दकथा हजारों जलमग्न मछलियों ने मोती के अक्षरों में इस प्रकार लिखी है—

'दीन देखि सब दीन, एक न दीनो दुसह दुख।
सो अब हम कहँ दीन, कछुक न राख्यो निकट तुव॥'

वेदना भरी वह इक्कीसवीं तारीख़ उगी और अस्त हुई। बिलखता हुआ हृदय क्रन्दन कर उठा—'यह न उगी होती तो!' सब जानते हैं कि मृत्यु अनिवार्य है, तब भी ऐसे समय सबको यों लगता ही है कि क्यों इस मृत्यु का सृजन किया?'

"भगवान् तथागत के निर्वाण के समय शिष्य आनन्द को और परमहंस रामकृष्ण के उत्सर्ग के समय विवेकानन्द को ऐसा ही हुआ था और वह होगा ही, क्योंकि मानव पाषाण की प्रतिमा नहीं है।

"पर यह भी इतना ही सत्य है कि चिता की उज्ज्वल ज्वालाएँ ही पृथ्वी पर प्रकाश-प्रेरणा फैलाती हैं और अन्धेरे में भटकते हुए मानवों को मार्ग दिखाती हैं। चिता के इस चिरंजीव चेतन तत्त्व से हम प्रार्थना करते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'महानल ! दे दे इक चिनगारी ।"

प्रेरणा की वह चिनगारी जब चिता का स्पर्श पाकर निकली तो उसमें सौगुना तेज आ गया और उसने गुरुदेव के शेष बचे हुए कार्य को पूरा करने की दृढ़तर प्रतिज्ञा को जन्म दिया। विदेशों में भारतीय संगीत की विजय-पताका फहराने की जो गुरुदेव की उत्कट अभिलाषा थी उसे पूरा करने का व्रत उनके इस शक्ति-संचारित शिष्य ने लिया। इस व्रत को पूर्ण करने के लिये जो तैयारी अपेक्षित थी उसमें वे तत्काल जुट गये। अंग्रेजी भाषा पर अधिकार पाये बिना विदेशों में भारतीय संगीत का प्रतिनिधित्व कैसे किया जाता ? इसलिये प्रायः ३५ वर्ष की अवस्था में उन्होंने एक बालक की भाँति उत्साह से और अथक परिश्रम से अंग्रेजी भाषा का अपना सीमित ज्ञान बढ़ाना शुरू कर दिया। उनके बालकोचित उत्साह को देखकर छोटे भ्राता आश्चर्य करते थे और मज़ाक भी उड़ाते थे, किन्तु एक ध्रुवध्येयी के लिये कुछ भी असाध्य नहीं। उत्साह का अखंड भंडार जिसके हाथ लगा हो, वह कभी बूढ़ा नहीं हो सकता और नई वस्तु सीखने के लिये कभी अशक्त नहीं बन सकता। पंडितजी अपने एक शिष्य श्री चमनलाल आचार्य एम. ए., एल. एल. बी. से स्वयं शिष्य भाव अपना कर अंग्रेजी का अभ्यास करते थे। अन्त में मार्च सन् १९३३ में उन्होंने छोटे भाई के साथ इटली के फ़्लॉरेन्स नगर में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय म्यूज़िक कॉन्फ़रेन्स में भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिये जलमार्ग से प्रस्थान किया।

७. प्रथम यूरोप यात्रा

फ़्लॉरेन्स के अन्तर्राष्ट्रीय संगीत सम्मेलन में अतिशय सफलतापूर्वक उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया और भारतीय संगीत के लिये विपुल प्रशंसा अर्जित की। वहाँ के गण्यमान्य संगीतकारों से उनका परिचय हुआ और वहाँ के स्थापत्य तथा शिल्प को देखकर उन्होंने अपनी कला-दृष्टि को विस्तृत बनाया। अफ़ग़ानिस्तान के भूतपूर्व शाहंशाह अमानुल्लाह ख़ाँ की तरफ़ से भी रोम (इटली) में आपका भव्य तथा अनौपचारिक रूप से स्नेहसिक्त स्वागत हुआ था। दीवान चमनलाल के यूरोप प्रवास से ज्ञात हुआ है कि आज भी शाहंशाह अमानुल्लाह और उनका परिवार पंडितजी के सहवास, परिचय और गान का स्मरण अश्रुपुलक सह करते हैं और "हमारे जीवन के वे सुखद क्षण फिर से कब आयेंगे," ऐसा कहा करते हैं। इटली के तत्कालीन कर्णधार बैनीटो मुसोलिनी के समक्ष भी उनका गान हुआ था और उन्होंने पंडितजी के स्वर-चमत्कारों को सुनकर उन्हें स्वरलिपि में उतार लेने के लिये रोम की रॉयल एकेडेमी ऑफ़ म्यूज़िक के प्रिंसिपल सींओरा आल्फ़्रेडो कसेल्ले को आदेश दिया था। इटली से पंडितजी जर्मनी गये। वहाँ हिडनबर्ग, रिबनट्रॉप, वॉनपोपेन वग़ैरह उच्चाधिकारियों के समक्ष क़रीब घंटे भर तक उनका गान हुआ था। उस समय जर्मनी में हिटलर अभी सत्तारूढ़ नहीं हुए थे। जर्मनी में ही देश-देशान्तरों के राजदूतों की एक सभा में भी पंडितजी का गान हुआ था। जर्मनी से वे हॉलेण्ड, बेल्जियम, फ़्रांस और स्विट्ज़रलैंड होते हुए इंग्लैंड पहुँचे। इन सभी देशों में संगीत के शिक्षा-केन्द्रों में उनके सप्रयोग व्याख्यान हुए, जिनमें उन्होंने भारतीय श्रुति-व्यवस्था, रागों का पुरुषत्व-स्त्रीत्व, स्वर और भाव का संबंध इत्यादि विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला था। इन सभी देशों के उच्च शिक्षण-शास्त्रियों से भी उनकी चर्चा हुई और सभी जगह उन्होंने भारतीय संगीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की उच्चता और महत्ता का सबको दर्शन कराया। इंग्लैंड में बी. बी. सी. के कंडक्टर सर हैनरी वुड के साथ उनकी घंटों तक चर्चा हुई और सर हैनरी वुड पंडितजी के भाव-दर्शन से अतिशय प्रभावित हुए। इसी बीच उन्हें वेल्स में होने वाली एक संगीत-परिषद् में भारत के प्रतिनिधि के रूप में निमंत्रित किया गया। लॉयड जॉर्ज ने उस परिषद का उद्‌घाटन किया था। इस परिषद् में भी पंडितजी ने अपूर्व सफलता प्राप्त की। और वे पुनः लंदन लौटे। इंग्लैंड के तत्कालीन विदेश मंत्री ने पंडितजी की प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य के सभी देशों के अधिकारियों के नाम परिचय-पत्र दिये थे, जिससे कि वे सुविधापूर्वक सर्वत्र भ्रमण कर सकें और अपना महत् कार्य सिद्ध कर सकें। उन्हीं दिनों भारत के हाईकमिश्नर ने लेडी विलिंगडन को एक पार्टी दी थी जिसमें पंडितजी को भी निमंत्रित किया गया था। उस पार्टी में लेडी विलिंगडन से पंडितजी की संगीत के विषय में कुछ चर्चा हुई और लॉर्ड इरविन, कर्नल वेजवुड वैन, लॉर्ड स्नैल, जॉन साइमन इत्यादि उच्चाधिकारियों और सामन्तों से भी घनिष्ठ परिचय हुआ।

पंडितजीके स्वाभिमानकी एक और घटना यहाँ विशेष उल्लेखनीय है। लन्दनमें भारतके तत्कालीन हाइकमिश्नर ने पंडितजीको सलाह दी कि वे साम्राट् जॉर्ज पंचमके नाम एक पत्र लिखें और उनके समक्ष अपना संगीत प्रस्तुत करनेके लिये थोड़ा-सा समय माँग लें। बस इतना करनेसे ही रायबहादुरीका खिताब अनायास हाथ लग जायगा। इस सुझावपर पंडितजीने जो उत्तर दिया था वह इस प्रकार है—"भारत का यह ब्राह्मण कलाकार क्या जॉर्ज पंचम से संगीत सुनाने की भिक्षा माँगने जायगा? यह तो स्वयं सम्राट् का कर्त्तव्य है कि वे अपने देश में आये हुए भारत के कलाकार को निमंत्रित करें। यदि उन्हें इसकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती तो क्या मैं अपनी ओर से याचना करूँ? ऐसी याचना ब्राह्मणत्व और कला-पूजा दोनों के विरुद्ध है। इस सिद्धान्त के सामने मेरे लिये रायबहादुरी का खिताब कौड़ी भर भी मूल्य नहीं रखता।" ध्यान रहे कि यह वह ज़माना था जब लोग ऐसे खिताबों के लिये हज़ारों रुपये पानी की तरह बहाते थे और अधिकारियों की चाटुकारिता करते थे। उस काल में ऐसा उत्तर देनेवाले कलाकार का स्वमान कितना उन्नत रहा होगा यह सहज ही अनुमान हो सकता है।

पंडितजी के लन्दन में अवस्थान के समय ही उन्हें रूस से भी निमन्त्रण मिला था जिसे वे प्रायः स्वीकार कर चुके थे किन्तु विधि का विधान बिल्कुल भिन्न था जो वज्रोपम कठोरता और तड़ित्सम आकस्मिकता के साथ सामने आया।

वेल्स से लौटने पर अचानक पत्नी की मृत्यु का तार मिला—प्रसूति के समय पत्नी और पुत्र दोनों का अवसान हुआ था। यह आघात इतना गहरा और आकस्मिक था कि वज्र को भी गला देता, फिर पंडितजी का तो करुण, कोमल, भावनाशील हृदय ठहरा। प्रायः १०–११ वर्ष के विवाहित जीवन के बाद जब सन्तान का मुख देखकर अपने उमड़ते हुए वात्सल्य का एक अवलम्ब पाने की आशा की हो, अपने तरसते हुए हृदय के टुकड़े को पाकर नयन मन तृप्त करने की उत्कंठा अन्तर में सँजोई हो, दूरातिदूर विदेश में बैठे हुए उस भावी सुख के सुनहले स्वप्न देखे हों, स्वदेश से प्रस्थान करते समय सगर्भा पत्नी को उनके पिता के यहाँ छोड़ कर निश्चिन्त बन चुके हों—ऐसी अवस्था में यह कुलिशकठोर समाचार मिले कि नवप्रसूता पत्नी बालक सहित चल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बसीं—तब वेदना का सागर उमड़ कर धैर्य का बाँध न तोड़े तो और क्या हो ? किन्तु वह बाँध टूट जाने पर भी यूरोप की सभ्यता खुल कर रोने का जब निषेध करे, उन्मुक्त आँसुओं द्वारा व्यथाभार हल्का करने में प्रतिवेशियों को जब आपत्ति हो, तब मर्माहत वियोगी क्या करे ? वियोग के समय जब स्वयं दूर विदेश में हों, पत्नी को पित्रालय से ससुराल में किस विकट परिस्थिति में जाना पड़ा होगा यह जब ज्ञात हुआ हो, अपनी अनुपस्थिति में चिकित्सा आदि की व्यवस्था सम्यक् हुई होगी या नहीं इसमें भी जब आत्मीयजनों के चिर-परिचित व्यवहार के कारण पूरा सन्देह हो, स्वयं उपस्थित रहे होते तो क्या न किया होता, यह विचार जब हृदय को सालता हो, तब जिन अनगिनत भावों के शाबल्य से असह्य वेदना हुई होगी, उनकी कुछ कल्पना अवश्य की जा सकती है। बलात् जिनका दमन किया गया, हृदयाकाश में उमड़ते हुए व्यथा-नीर से बोझिल वे श्यामघन बरसने का स्थान न पाकर कसमसाते हुए जाकर मस्तिष्क से टकराये और उस वियोगी की स्मृति को छिन्न-भिन्न करके बिखर गये। पंडितजी की स्मृति-शक्ति का एकबारगी लोप हो गया और अन्य सभी कार्यक्रम रद्द करके उसी अवस्था में उन्हें नवम्बर १६३३ में भारत लौट आना पड़ा।

८. यूरोप से प्रत्यागमन के बाद की प्रवृत्ति

भारत लौटने पर समय के प्रभाव से धीरे-धीरे दुःख का प्रबल आवेग शमित हुआ, खोई हुई स्मृति कुछ आंशिकरूप में सदा के लिये खोई रही और शेष पूरी लौट आई। दुःख भरे आघातों के प्रभाव से मुक्ति दिलाने वाला एकमात्र समय ही तो है। यहाँ भी उसने मुक्ति तो अवश्य दिलाई, किन्तु यह आघात पंडितजी के कलाकार हृदय में एक ऐसा स्थायी प्रभाव छोड़ गया जो कि उनकी सम्पूर्ण सत्ता में, संपूर्ण जीवनीशक्ति में एक टीस बनकर सदा के लिये व्याप्त हो गया। उनके संगीत में निहित करुणाके वातायन से वह टीस झाँका करती है और सहृदयों पर अलक्षित रूप से अपना प्रभाव डाला करती है। संगीत में पंडितजी की जो सहज भावुकता थी, उसे इस टीस ने और भी मृदु बनाया, सूक्ष्म बनाया और हृदयस्पर्शी बनाया। यहाँ सहसा कविवर सुमित्रानन्दन पन्त की ये पंक्तियाँ याद आ जाती हैं:—

"वियोगी होगा पहला कवि आह से निकला होगा गान,
छलकते आँसू से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।"

कहना न होगा कि स्वर्गीया श्रीमती इन्दिरा देवी ने जीवितावस्था में पंडित जी की साधना में, अपने मौन समर्थन द्वारा जो प्रबल योगदान किया, उससे तो संगीत जगत उनका ऋणी है ही, किन्तु अपनी मृत्यु द्वारा पंडितजी के लिए करुणा का अखण्ड प्रेरणा स्रोत छोड़कर वे चिरकाल के लिए हम सब पर ऋण का अमित भार छोड़ गईं। यदि ऐसा न होता तो क्या होता, यह कहना कभी भी अल्पज्ञ मानव के लिए संभव नहीं हो सकता, किन्तु इतना तो अवश्य है कि वे पंडितजी के संगीत की करुणा में आज भी जीवित हैं और उनकी मर्मस्पर्शी कला के साथ अमर होकर रहेंगी।

भड़ौंच का पुराना घर और उस नगरका पूरा वातावरण दुःखद स्मृतियों से संकुल था, इसलिए भड़ौच छोड़कर पंडितजी बम्बई में जा बसे। इतनी सफल यूरोपयात्रा के कारण स्वदेश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में उनकी कीर्ति कई गुनी बढ़ गई और जलसों द्वारा धनप्राप्ति में भी काफ़ी वृद्धि हुई। बम्बई में उन्होंने 'संगीत निकेतन' नाम से एक विद्यालय की भी स्थापना की और इस प्रकार उखड़े हुए जीवन को पुनः स्थिर करने में वे संलग्न हो गये। सन् १९४१ तक बम्बई में पंडितजी का जीवन-क्रम चलता रहा। इसी बीच सन् १९३८ में संगीत के प्रयोग-पक्ष से सम्बन्धित एक पुस्तक का उन्होंने लेखन तथा प्रकाशन किया। 'संगीताञ्जलि' का यह प्रथम भाग था, जिसमें प्रथम वर्ष का पाठ्यक्रम था। इस काल में उन्होंने भारत भर में जलसों के निमित्त खूब यात्राएँ कीं। वर्ष भरमें प्रायः ४० हज़ार मील की उनकी यात्राएँ प्रसिद्ध हैं। द्वितीय महायुद्ध में १९४२ में जब अनेकों ने बम्बई शहर छोड़ा, तब पंडित जी ने भी वहाँ का विद्यालय बन्द कर दिया और वे अपना पूरा प्रतिष्ठान सूरत ले जाकर वहीं रहने लगे।

संगीत के शास्त्रों का अध्ययन, मनन, चिन्तन और मन्थन पहले की भाँति अब भी चल रहा था। प्राचीनों के कहे हुए षड्जग्राम के स्वरस्थान आज वीणा पर सिद्ध किये जा सकते हैं या नहीं, इस मौलिक उलझन को सुलझाने के लिए वे बार बार यत्न करते। भरतादि के तत्सम्बन्धी वाक्यों का पुनः पुनः अनुशीलन करते और सत्यान्वेषण में सतत यत्नशील रहते। इसी अनुसन्धान के कार्य में एक बार अचानक उनका ध्यान षड्जग्राम की चौथी मूर्च्छना के नाम 'शुद्धषाड्जी' की ओर आकर्षित हुआ और सितार पर आधुनिक मन्द्र पंचम के पर्दे से ही षड्जग्राम की स्वरावली सुगमता से प्राप्त हो सकती है, यह रहस्य खुल गया। उसके खुलते ही वे बालक की भाँति आनन्द से झूम उठे। इस प्रकार संगीत के सतत अभ्यास, शिक्षण, विविध संगीत सम्मेलनों में आलोचना और शास्त्र-चिन्तन में उनका समय अतिवाहित होता रहा।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठापक महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी के साथ पंडितजी का दीर्घ काल से प्रगाढ़ सम्बन्ध रहा था। मालवीयजी ने कई बार उत्कट इच्छा प्रकट की थी कि पंडितजी की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय में एक संगीत महाविद्यालय की स्थापना हो जो संगीत के शिक्षण को विश्वविद्यालय के अन्य विषयों के शिक्षाक्रम के समकक्ष लाने में सहायक हो। संगीत महाविद्यालय की स्थापना के लिए वे कितने समुत्सुक थे, यह इसी से स्पष्ट है कि विश्वविद्यायल का जो प्रारम्भिक 'प्लान' या योजना उन्होंने बनाई थी उसमें संगीत विद्यालय का स्थान सर्वप्रथम रखा गया था। इधर गुरुदेव पं० विष्णु दिगम्बरजी ने भी संगीत और संगीतकार का स्तर ऊँचा उठाने के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग किया था और उसी कार्य को उनके बाद आगे बढ़ाने का और विद्यालयों में संगीत को समुचित स्थान दिलाने का भार वे अपने शिष्यों पर छोड़ गये थे। इसलिए एक ओर से महामना मालवीयजी का स्नेहभरा आग्रह और दूसरी ओर से गुरुदेव के जीवन-कार्य को पूरा करने का व्रत—इन दोनों कारणों से पंडित जी ने विश्वविद्यालय में संगीत महाविद्यालय की स्थापना का कार्य-भार वहन करना स्वीकार किया। इस कार्य-पूर्ति के निमित्त अर्थ-संग्रह का कार्य भी उन्होंने सन् १९४६ में आरम्भ कर दिया था और अनेकों उद्योगपतियों और सामन्तों से वे विपुल दान के वचन भी ले चुके थे कि इतने में नोआखाली काण्ड के साथ देश भर में ऐसी आग लगी कि जिसमें इस प्रकार की प्रवृत्तियों के लिए कोई स्थान न रहा। इसी समय महामना जी का परलोकगमन हुआ और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देश-विभाजन के कारण कई करोड़पति कौड़ीपति हो गये। अतः अर्थसंग्रह का कार्य दैवयोग से अवरुद्ध हो गया और संगीत महाविद्यालय की स्थापना सुदूरवर्ती दिखाई देने लगी।

९. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में

बाह्य परिस्थितियों की अनुकूलता मिलने पर अगस्त सन् १९५० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में तत्कालीन कुलपति महोदय श्रीमान् पं० गोविन्द मालवीय के कार्यकाल में श्रीकला संगीत भारती के नाम से संगीत महाविद्यालय की स्थापना हुई, जिसमें चित्रकला तथा मूर्तिकला के उपविभाग को भी स्थान मिला। महामनाजी तथा गुरुदेव की जीवन अभिलाषा पूर्ण करने के हेतु पंडितजी के उन्मुक्त कलामानस ने विश्वविद्यालय के औपचारिक वातावरण में बँधना स्वीकार किया और वे इस संस्था के अध्यक्ष बने और उस पद के लिये आवश्यक प्रशासन (administration) को निभाने में उनके जीवन का एक नया अध्याय खुला। इस संस्था की स्थापना के साथ उत्तर भारत के संगीत का भी एक नया अध्याय आरम्भ हुआ, क्योंकि किसी विश्वविद्यालय में एक पूरे कॉलेज के रूप में संगीत की शिक्षा को स्थान मिलने का यह प्रथम अवसर था। संगीत में स्वतंत्र रूप से स्नातक तथा स्नातकोत्तर उपाधियों के लिये तथा अनुसंधान और तत्संबंधी उपाधियों के लिये भी इसके पूर्व किसी विश्वविद्यालय में स्थान न था। इस प्रकार भारतीय विश्वविद्यालयों में माता सरस्वती की केवल पुस्तकधारिणी खंडित मूर्ति वीणा के निनाद से पूर्ण हुई। भारतीय संगीत का परम सौभाग्य है कि यह संस्था पंडितजी के प्रतिभाशाली और सबल व्यक्तित्व का अवलम्ब पाकर शैशव की कठिनाइयों को पार कर चुकी है और कैशोर तथा यौवन के उज्ज्वल भविष्य के दृढ़ विश्वास में पनप रही है। इस संस्था की स्थापना के साथ ही विश्वविद्यालय में संगीत तथा ललित-कला के लिये स्वतंत्र 'फ़ैकल्टी' बनाई गई जिसके आरम्भ से ही पंडितजी 'डीन' हैं।

१०. शिक्षक तथा शिक्षणशास्त्री के रूप में

कला की उच्चता और शिक्षण में प्रवीणता इन दोनों का एकत्र अवस्थान दुर्लभ माना जाता है। कलाकारोचित भावुकता और शिक्षकोचित धैर्य आदि गुणों का एक ही व्यक्ति में पाया जाना विरल होता है। किन्तु पंडितजी को शिक्षक के रूप में जिन्होंने देखा है या जिन्हें प्रत्यक्ष उनसे शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य मिला है, वे इस क्षेत्र में भी उनकी अपूर्व कुशलता और सफलता का अनुभव पाये बिना नहीं रह सकते। विद्यार्थी को सीखने में किस प्रकार सुविधा होगी इसका वे सदैव ध्यान रखते हैं और विद्यार्थियों के क्रम-विकास के लिये नये-नये मार्ग खोजने में सर्वथा प्रयत्नशील रहे हैं। एक ही बात को बारबार दोहराने की आवश्यकता पड़ने पर धैर्य-पूर्वक और परिश्रम सहित उसे दोहराना और सुगम बनाने के लिये नये-नये रूपों में उसे सामने रखना एक सफल शिक्षक के लिये अनिवार्य होता है। यह क्षमता पंडितजी के शिक्षक व्यक्तित्व में ओतप्रोत है। किसी कठिन खटके के छोटे से छोटे टुकड़े बना कर बार बार विद्यार्थियों को रटवाते हुए जिन्होंने उन्हें देखा होगा, वे मुक्त हृदय से इस तथ्य को स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते। जिन्होंने शिक्षक के रूप में उनके दर्शन नहीं किये होंगे वे तो शायद विश्वास भी न कर सकें कि ये संगीत सम्राट् शिक्षण देने में इतना घोर परिश्रम करते होंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्यार्थी को कहाँ कठिनाई हो रही है और वह कैसे दूर की जा सकती है इस ओर वे सदैव सजग रहते हैं। उनकी इस जागरूकता ने संगीत-शिक्षण में कई सुगम उपायों को जन्म दिया है। उदाहरण के लिये लयकारी के क्लिष्ट प्रकारों को सिखाने के लिये उन्होंने जो गणित-सिद्ध सुगम प्रणाली खोजी है उसकी सरलता और वैज्ञानिकता अनुभव-सिद्ध है। सिखाते समय एक क्षण के लिये भी वे दूसरी किसी ओर ध्यान नहीं देते और इसी कारण विद्यार्थियों के लिये भी अनवधान का कहीं स्थान ही नहीं रहता। विद्यार्थियों की इन्द्रियाँ और मनोवृत्तियाँ स्वयं ही केन्द्रित हो जाती हैं।

सिखाने के काम में पंडितजी की तीव्र रुचि उनके शिक्षक व्यक्तित्व की बहुत बड़ी विशेषता है। वे कहा करते हैं कि सिखाते समय भी शिक्षक सीखता ही है और ऐसा भाव रखने से ही एकरसता (monotony) या ऊबने की भावना से मुक्ति मिल सकती है। ऊबना तो पंडितजी जानते ही नहीं, प्रत्युत सिखाने के लिये सदा नव-उत्साह लिये रहते हैं। वे कहा भी करते हैं कि जैसे माँ बालक को दूध पिलाये बिना नहीं रह सकती वैसे ही गुरु भी शिक्षा दिये बिना नहीं रह सकता।

विद्यार्थियों के क्रम-विकास में सुगमता और समय का लाघव कैसे हो इसका गहन चिन्तन करते हुए और ४० वर्ष से ऊपर के अपने शिक्षण अनुभव के आधार पर उन्होंने संगीत के शिक्षण का जो पाठ्यक्रम तैयार किया है, जो काशी हिन्दू विश्वविद्याल के संगीत महाविद्यालय में चालू है, उसकी वैज्ञानिकता और सफलता स्वयं सिद्ध है। सामान्य रूप से प्रचलित पाठ्यक्रमों में सुगमता की दृष्टि से क्रमिकता का अभाव दिखाई देता है। इसलिये पंडितजी का बनाया हुआ पाठ्यक्रम संगीत शिक्षा के क्षेत्र में उनकी एक विशेष देन है। इस देन की महत्ता के स्वीकार होने में और संगीत शिक्षा के क्षेत्र में उसका प्रचार होने में कुछ समय लग सकता है, किन्तु सुगमता के इस वैज्ञानिक मार्ग को पथिकों को कमी न रहेगी। समय ही इस क्रम की महत्ता बतायेगा। साथ ही उन्होंने संगीत-लिपि या (notation) में भी सूक्ष्मता और सुगमता के एकत्र समन्वय को यत्न किया है और इसी दृष्टि से प्रचलित संगीत-लिपि प्रणालियों में कुछ परिवर्तन के साथ नवीन योजना की है। भारतीय संगीत की सूक्ष्मता पर आँच न लाते हुए सुगमता की दिशा में यह प्रयास शिक्षा के क्षेत्र में अपना विशेष स्थान बनायेगा।

भारतीय संगीत के मूल तत्त्वों को ध्यान में रखते हुए तथा शिक्षा के सर्वसामान्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का उनके साथ समन्वय करते हुए जो पाठ्यक्रम पंडितजी ने प्रस्तुत किया है, वह एक प्रकांड शिक्षण-शास्त्री के रूप में उनकी प्रतिष्ठा के लिए पर्याप्त है।

पंडितजी के शिक्षक व्यक्तित्व का प्रतीक उनका शिष्य समुदाय ही है। जिन व्यक्तियों को पंडितजी के शिष्यत्व का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उनमें अग्रगण्य हैं—श्री शिवकुमार शुक्ल, श्रीमती पिरोज के. दस्तूर 'संगीतालंकार', कुमारी बिजनबाला घोष दस्तीदार 'संगीतालंकार' श्री० ठाकुरप्रसाद उपाध्याय, श्री० यशवन्तराय पुरोहित, श्री० बलवन्तराय भट्ट 'संगीताचार्य' वर्तमान प्राध्यापक श्रीकला संगीत भारती का० वि० वि०, जो सन् १९३८ से पंडितजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के ही सान्निध्य में रहे हैं और आज भी देश में तथा कुछेक विदेशों में उनके सार्वजनिक संगीत-कार्यक्रमों में सफल संगीतकार के रूप में सुपरिचित हैं तथा डॉ० कुमारी प्रेमलता शर्मा एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी), पीएच० डी०, साहित्याचार्य, संगीतालंकार, वर्तमान प्राध्यापिका श्रीकला संगीत भारती का० वि० वि०, जिन्हें पंडितजी से संगीत के प्रायोगिक शिक्षण के अतिरिक्त उनकी मौलिक शास्त्रीय विचार-धारा विरासत में मिली है। पंडितजी की गान-शैली में आशास्पद विकास करने वालों में से मुख्य हैं—श्री कनकराय त्रिवेदी, श्री राजा भाउ सोनटक्के, कुमारी नलिनी गजेन्द्रगडकर बी० ए० (तीनों अध्यापक श्रीकला संगीत भारती का० वि० वि०)। श्री कला संगीत भारती में पंडितजी की गान-शैली में शिक्षा पाये हुए तथा वर्तमान शिक्षार्थियों में से कुछ होनहार नाम ये हैं—श्रीमती विभा शर्मा, श्रीमती सत्या शर्मा श्रीमती मालती जैन, श्री गोपीकृष्ण नागर, श्री लक्ष्मीपति शुक्ल, श्रीमती सुभद्रा कुलश्रेष्ठ, श्री चित्तरंजन ज्योतिषी, श्री अतुल देसाई, श्री प्रदीप दीक्षित, श्री सीतापति शुक्ल, श्री दामोदर होता, श्री नलिन धोलकिया इत्यादि।

गुजरात में पंडितजी के निवास के समय तथा अन्यत्र प्रवास में समय-समय पर शिक्षा पाने वाले व्यक्तियों में से कुछ उल्लेखनीय नाम इस प्रकार हैं—श्री पी० एन० बरवे, सुश्री बुलबुल मित्र, श्री चन्द्रकान्त पुरोहित, श्री कीकुभाई भगत, श्री० दिनकर अंजारिया, श्री सी० सी० दमनिया, गुजरात के सुप्रसिद्ध नाटककार सेठ प्रागजीभाई दोसा, श्री राजाभाउ जोशी, हारमोनियमवादक श्री शंकर भगत, श्री महादेव शर्मा, सूरत निवासी श्री हरकान्त शुक्ल, श्री गजेन्द्र त्रिवेदी, श्री दिलीप दलाल, गुजरात के सुप्रसिद्ध संगीत भास्कर मास्टर वसन्त, स्व० शशिकान्त पाठक तथा स्व० व्रजलाल लाखाणी।

पंडितजी के गुजरात स्थित संगीत-निकेतन से जिन्हें उपाधि द्वारा मान्यता मिली है वे हैं—भारत के अद्वितीय दिलरुबावादक श्री नागरदासजी, श्री नानू भाई देसाई, श्री ठाकुर देसाई, श्रीमती सरस्वती जोशी इत्यादि।

पंजाब के कृपा पात्र शिष्यों में ये हैं—ठाकुर धराचन्दजी, पं० कुंजलाल, पं० रतनलाल मदन, पं० पन्नालाल मदन, पं० श्रुतिरत्न शर्मा तथा काश्मीर के मास्टर करमचन्द।

एक नाम यहाँ विशेष उल्लेखनीय है और वे हैं पंडितजी के गुरुबन्धु श्री० पी० ए० सुन्दरम् अय्यर के सुपुत्र श्री० एम० एस० गोपाल कृष्णन् अय्यर, जिन्होंने अपने वायलिनवादन में एकनिष्ठा से पंडितजी की गान-शैली को हूबहू प्रतिबिम्बित करने की अनुपम साधना द्वारा छोटी आयु में ही विलक्षण सिद्धि पाई है।

शिक्षक पंडितजी के व्यक्तित्व का एक अन्य पहलू भी दर्शनीय है। शिष्य-शिष्याओं के प्रति उनका वात्सल्य असीम है। कुछ दिन उनके पास शिक्षा पाया हुआ विद्यार्थी भी उनके सान्निध्य में बिताए हुए पावन क्षणों को जीवन भर भुला नहीं सकता। उनका अतुल वात्सल्य गुरु-शिष्य के संबंध के साथ-साथ पिता-पुत्र के संबंध की स्वयं ही दोनों ओर से स्थापना करा लेता है। इसीलिये गुरु-शिष्य के सम्बन्ध की प्राचीन मर्यादा का उनके सान्निध्य में बिना प्रयास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही पालन हुआ करता है। वात्सल्य के साथ ही उनकी कठोर अनुशासनप्रियता भी उल्लेखनीय है। इसीलिये उनका वात्सल्य कभी किसी को उच्छृंखलता या उद्दंडता की सीमा पर पहुँचने नहीं देता। उनका गौरवमय व्यक्तित्व स्वयमेव अनुशासन का पालन करा लेता है। विश्वविद्यालय में तथा अन्यत्र उनके तत्वावधान में जितने समारोह या उत्सव होते हैं उनमें उपस्थित जन-समुदाय में, फिर वे विद्यार्थिवर्ग के हों या और कोई, पूर्ण अनुशासन तथा शान्ति का सहज दर्शन सबने किया है।

११. बहुमुखी प्रतिभा और विविध प्रवृत्तियाँ

पंडितजी की बहुमुखी प्रतिभा संगीत की परिधि लाँघ कर जिन विविध प्रवृत्तियों के रूप में परिलक्षित होती है उनका भी यहाँ हम अल्प दर्शन कर लें।

संगीतकार पंडितजी का जो अन्य रूप संगीत के साथ सबसे अधिक सम्बद्ध है, वह है उनका व्याख्याता रूप। वाणी के बल पर जगत् जीतने का योगिराज पिता का आशीर्वाद पंडितजी में संगीत तथा व्याख्यान-वाणी की इन दोनों दिशाओं में फलीभूत हुआ है। अंग्रेजी की एक कहावत है—'well spoken is half sung' (सुन्दर भाषण आधा संगीत है।) यह कहावत इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि संगीत और भाषण दोनों की तह में स्वर की, काकु की जो शक्ति काम करती है वही दोनों की तात्विक एकता का सूत्र है। इसलिये जो संगीतकार भाषा के दैनिक प्रयोग में व्यवहृत काकु स्वर का अर्थ-बोध की दृष्टि से संगीत के स्वरों के साथ ऐक्य समझ सकता है, उसकी अनुभूति पा सकता है, वह संगीत की ही भाँति भाषण द्वारा भी जनता को मंत्रमुग्ध कर लेगा इसमें क्या सन्देह है? व्याख्याता पंडितजी के भाषणों की ओजस्विता, आवश्यकता पड़ने पर कोमलता और अवसरानुकूल प्रभावशालिता का यही रहस्य है। जनता के हृदय को तत्काल पकड़ में ले लेने की यह कुंजी जिसके हाथ लगी हो उसकी लोकप्रियता का क्या कहना? साथ ही पंडितजी की बहुश्रुतता भी उनके भाषणों को सारयुक्त और साधार बनाने में बहुत सहायक होती है।

वे कहा करते हैं कि व्याख्यान कला के उनके तीन गुरु हैं—एक तो पं० लालन जो जैन धर्म के महापंडित थे और अमरीका की धर्म-परिषद् में भी जैन प्रतिनिधि के रूप में हो आये थे। दूसरे महामना पं० मदनमोहन मालवीय जिनसे पंडितजी ने इस कला में कुशलता पाने के लिये साक्षात् मार्गदर्शन लिया था। और तीसरे, साधु टी० एल० वासवानी जिनकी व्याख्यान शैली का पंडितजी पर काफ़ी प्रभाव पड़ा है।

हिन्दी, गुजराती और मराठी इन तीनों भाषाओं में वे धाराप्रवाह बोल सकते हैं और उनके प्रवचन के विषय संगीत तक ही सीमित नहीं होते। प्रथम यूरोप प्रवास के समय तो वे अंग्रेजी में भी धारावाहिक बोला करते थे, किन्तु पत्नी के अकाल अवसान से सदा के लिये जो आंशिक स्मृति-लोप हुआ उसमें अंग्रेजी का बहुत सा ज्ञान तिरोहित हो गया। सन् १९३१ ई० में सिंध के प्रवास के समय उनके संगीत के जलसों की अपेक्षा व्याख्यान ही अधिक हुए थे। २८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिनों में भिन्न-भिन्न विषयों पर ६४ व्याख्यान उन्होंने दिये थे। व्याख्याता पंडितजी का यह रूप दर्शनीय है।

माता सरस्वती की वीणा का यह उपासक उनके अपर हस्त में स्थित पुस्तक से भी परे नहीं है। साहित्य के विभिन्न अंगों के गहन अध्ययन के साथ साथ वे लेखन कला में भी निपुण हैं। बहुत पहले उन्हें गुजराती कविता लिखने का काफ़ी शौक था और प्रथम यूरोप प्रवास के पूर्व उन्होंने 'मेघदूत' और 'शाकुन्तल' का गुजराती में पद्यानुवाद भी किया था। दुर्भाग्यवश ये रचनाएँ भड़ौंच का घर समेटने की अस्तव्यस्तता में सदा के लिये खो गईं। उसी प्रकार कई गुजराती कहानियाँ भी बहुत पहले उन्होंने लिखी हैं, कई मासिकों और पाक्षिकों के विशेषांकों को भी अपने लेखों से अलंकृत किया है। पंडितजी की यह प्रतिभा उनके संगीत संबंधी शास्त्रीय लेखन में भी पग-पग पर दृष्टिगोचर होती है। उनकी भाषा ओज, प्रसाद और माधुर्य तीनों गुणों से ओत प्रोत है और उनके गद्य में भी पद्य की गति और प्रवाह के दर्शन होते हैं। कविता, कहानी, लेख इत्यादि साहित्य के इन प्रकारों की रचना के अतिरिक्त पंडितजी का लेखक व्यक्तित्व एक अन्य दिशा में भी परिस्फुट होता है और वह है उनका पत्र-लेखन। स्पष्टवादिता के साथ साथ शिष्टतापूर्ण संयम, शब्दों की मितव्ययिता के साथ साथ ध्वनि का विपुल उपयोग, सहज भावुकता इत्यादि गुण उनके पत्रों को साहित्य की श्रेणी में रखने को बाध्य करते हैं। लेखक पंडितजी की ये सब विशेषताएँ उन्हें साहित्यकार एवं साहित्य-मर्मज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं।

भाषा-ज्ञान की दिशा में भी पंडितजी की प्रतिभा ने विकास पाया है। संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा अंग्रेजी इन भाषाओं के यथेष्ट ज्ञान के साथ साथ बंगला, नेपाली, पंजाबी और उर्दू बोलने और समझने का भी उन्हें अच्छा अभ्यास है। बाल्यकाल में अर्धमागधी का भी उन्हें जो थोड़ा सा अभ्यास करने का अवसर मिला था उसके कारण उस भाषा का भी उन्हें काफ़ी परिचय है। उनके ज्येष्ठ भ्राता तो अर्धमागधी के महापंडित थे। हिन्दी के अन्तर्गत व्रज, अवधी और राजस्थानी का उनका गहन अध्ययन उन जैसे अहिन्दी भाषा भाषी के लिये विशेष गौरव की बात है। इस बहुभाषा ज्ञान ने उन्हें एक ऐसी सूक्ष्म दृष्टि प्रदान की है जो भिन्न भिन्न भाषाओं में एकता के सूत्र ढूँढ़ने में पारगामी है। बहुभाषा ज्ञानी पंडितजी की यह विशेषता उन्हें भारत के सभी प्रदेशों में लोकप्रिय बनाने में विशेष सहायक है।

ऊपर लिखी भाषाओं में से संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी—इन भाषाओं के साहित्य का उन्होंने विद्यार्थी जीवन से ही काफ़ी अध्ययन किया है और यह अध्ययन उनकी बहुश्रुतता का आधार है। साहित्यानुरागी पंडितजी का यह पहलू भी उनके व्यक्तित्व में विशेष स्थान रखता है।

संगीत के साथ साथ उन्हें बाल्यकाल से ही अभिनय और चित्रकला में भी विशेष रुचि रही है। अभिनय और संगीत के अटूट सम्बन्धको स्थापित करनेवाले तो वे अकेले संगीतकार हैं। भरत के 'नाट्यशास्त्र' में जिस प्रकार काकु स्वर के विधान द्वारा अभिनय और संगीत की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परस्पर निर्भरता घोषित की गई है; उसका मूर्तिमन्त उदाहरण पंडितजी के संगीत और भाषण में सदैव मिलता है। चित्रकला के बाह्य विकास के लिए समय और शिक्षण की पूरी सुविधा उन्हें नहीं मिली, किन्तु उनकी वह सहज रुचि परिष्कृत और परिमार्जित कलामर्मज्ञता के आन्तरिक रूप में अवश्य ही विकसित हुई है। कलापारखी पंडितजी का यह पक्ष भी प्रबल है।

यह सब तो हुआ, किन्तु अब हम पंडित जी का एक बिलकुल भिन्न रूप में दर्शन करने जा रहे हैं। बचपन से ही ज्येष्ठ भ्राता वैद्यराज पं० बालकृष्णके सान्निध्य से उन्हें आयुर्वेद का सामान्य ज्ञान और चिकित्सा-शास्त्र में रुचि प्राप्त हुई थी। गृहस्थ जीवन के प्रायः आरम्भ से ही उन्हें बायोकेमिक-चिकित्सा पद्धति के अध्ययन में रुचि हुई और धीरे धीरे अनुभव से उस पद्धति की निर्दोषता और सफलता पर विश्वास जमा। उसके बाद से वे इस पद्धति के सफल चिकित्सक रहे हैं और आज भी उन औषधियों का अधिकार-पूर्ण प्रयोग करने और परामर्श देने में निष्णात हैं। साथ ही नाड़ी देखकर रोग निदान करने में भी वे कुशल हैं। इतना ही नहीं रोगी का रंग, उसकी त्वचा और बैठने उठने का ढंग—इन सबके सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा रोग निदान करने की भी उन्हें विशेष दृष्टि प्राप्त है। चिकित्सक पंडितजी का यह रूप उनके शिष्य समुदाय और परिचित वर्ग में सुविदित है।

संगीत के साधक को व्यायाम से दूर रहना चाहिये, इस कहावत का पंडितजी सदैव स्वानुभव से खंडन किया करते हैं। उन्हें तो बचपन से ही तैरने का और कसरत, कुश्ती का खास शौक रहा है। पिता के सहवास से प्राणायाम में भी उनकी रुचि रही है। तैरने के बारे में तो वे बताया करते हैं कि प्रायः ७ वर्ष की आयु में ही वे नर्मदा के चौड़े पाट को पार कर लिया करते थे और बाद में तो तैरने का अभ्यास उन्होंने इतना बढ़ाया कि एक बार में ८ मील तक तैर कर चले जाते थे। खूब ऊँचे से नदी में कूदने का भी उन्हें बहुत शौक था और प्राणायाम का कुछ अनुभव होने के कारण वे तैरने में कई करामातें दिखाया करते थे। दो ढाई मिनट तक साँस रोक कर पानी के भीतर ही भीतर चले जाना और विभिन्न आसनों से तैरना—यह सब उनके बाएँ हाथ का खेल था। विद्यार्थी जीवन में भी वे अपने गुरुभाइयों को तैरना सिखाया करते थे। अपने जीवन में उन्होंने तैरने के बल पर छः डूबते हुये मानव प्राणों की रक्षा की है। इसी प्रकार दंड बैठक आदि कसरत का भी उन्हें बहुत शौक रहा है। लाहौर में तो वे प्रति दिन ७५० दंड बैठक लगाते थे। गुरुदेव ने संगीत विद्यालय में विद्यार्थियों को कसरत, कुश्ती सिखाने के लिये श्री माधवा शिन्दे नाम के जो शिक्षक रख छोड़े थे उनके सबसे होनहार शिष्य पंडितजी ही थे। बाद में तो उन शिक्षक को यहाँ तक कह देना पड़ा था—"अब तुम्हें सिखाने के लिए मेरे पास कुछ नहीं रहा। हाँ, कुश्ती का अभ्यास तुम्हें अवश्य करा सकता हूँ।" लाहौर में पंडितजी ने विश्वविजयी गामा साहब से भी कुछ दिन कुश्ती की शिक्षा ली थी। पंडितजी का सुदृढ़ शरीर और अद्भुत श्वास-प्रभुत्व विविध व्यायाम और प्राणायाम के अभ्यास का फल है। सन् १९५३ में रक्त-चाप के प्रबल आक्रमण से उनका नित्य का कसरत का नियम अब छूट सा गया है। किन्तु देह-दृढ़ता के साधक पंडितजी का यह व्यायाम-प्रेमी रूप उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन चुका है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत को विश्वव्यापी भाषा के रूप में प्रतिपादित करने वाले पंडितजी, विश्व शान्ति के लिए कला और संगीत के देशकालातीत, सार्वभौम माध्यम की महत्ता सदैव घोषित करते आये हैं। पिछले कुछ वर्षों में उन्होंने स्वदेश में तथा विदेशों में शान्ति-परिषदों में अपने भाषणों और संगीत के कार्यक्रमों द्वारा भाग लिया है। सर्वत्र और सदैव उन्होंने यही कहा है कि कला और संगीत ही संस्कृति को चिरस्थायी बनाने वाले ऐसे तत्त्व हैं, जिन्हें भाषा का, देशकाल का और धर्म इत्यादि का बंधन नहीं व्यापता। इसलिए शांतिस्थापना में ये ही तत्त्व सबसे अधिक उपयोगी हैं और मानव को स्थूल बन्धनों से मुक्त कराके विश्व-बन्धुत्व की भावना को दृढ़ कराने वाले हैं। इस संबन्ध में उन्होंने जो विदेशयात्राएँ की हैं, उनका ब्योरा हम कुछ आगे चल कर देखेंगे। यहाँ तो हम शान्तिदूत पंडितजी के कलाकार हृदय की गहराई से निकले हुए शान्ति सन्देश का स्मरण करते हुए उनकी बहुमुखी प्रतिभा का स्वल्प दर्शन पूरा करते हैं।

१२. पुनः विदेशयात्राएँ

अक्तूबर सन् १९५२ में भारत सरकार द्वारा अफ़ग़ानिस्तान में भेजे गये सांस्कृतिक मण्डल (Cultural Mission) का पंडितजी ने नेतृत्व किया और संगीत के माध्यम से भारत तथा अफ़ग़ानिस्तान के सांस्कृतिक सम्बन्ध को दृढ़ करके दोनों देशों में प्रगाढ़ मैत्री स्थापित की।

कुछ ही महीने बाद मई जून सन् १९५३ में वे विश्व शान्ति परिषद् के सदस्य चुने गये यथा बुडापेस्ट में होने वाले शान्ति परिषद् के विश्व अधिवेशन में उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया। उसी वर्ष वे भारतीय शान्ति परिषद् के उपाध्यक्ष के रूप में सर्वसम्मति से चुने गये। उक्त दोनों पदों के लिए वे पुनः चुने गये हैं और आज भी उन्हें सुशोभित किये हुए हैं अगले वर्ष मई-जून सन् १९५४ में उन्होंने पुनः जर्मनी में विश्व शान्ति परिषद् के वार्षिक अधिवेशन में भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए विदेश-यात्रा की। इसी यात्रा में आपने स्टॉकहोम में होने वाली हाइड्रोजन बम एवं ऐटम बम विरोधी वर्ल्ड एसेम्बली में भारत का प्रतिनिधित्व किया। इस बार रूस के विशेष आमंत्रण से उन्होंने वहाँ का भी दौरा किया।

विश्व-शान्ति परिषद् से संबंधित इन दोनों विदेश यात्राओं के दरम्यान उन्होंने चेकोस्लोवेकिया, हंगरी, नॉर्वे, स्वीडन, जर्मनी इत्यादि देशों से निमंत्रण पाकर वहाँ का दौरा किया और सर्वत्र भारतीय संगीत, साहित्य और कला के सांस्कृतिक महत्त्व की ध्वजा फहराई। संपूर्णतया नैसर्गिक संवादात्मकता पर आधारित भारतीय संगीत विश्व-शान्ति की स्थापना में बहुत महत्त्वपूर्ण योग दे सकता है, इस सत्य की विदेशों में स्वीकृति कराने वाले वे ही एकमात्र भारतीय संगीतकार हैं।

२ अक्तूबर १९५५ को गाँधी जयन्ती के अवसर पर वे नेपाल स्थित भारतीय दूतावास के विशेष निमन्त्रण से नेपाल गये। वहाँ संगीत के कार्यक्रमोंके अलावा नेपाल–भारत के मैत्री सम्बन्ध को दृढ़ बनाने में भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण योग दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१३. हृदय-रोग का आक्रमण और स्वास्थ्य लाभ

अक्तूबर सन् १९५४ में पंडित जी ने जब घुटनों के आरथ्राइटिस (जोड़ों का एक विशेष दर्द) के लिए डाक्टरों के परामर्शानुसार 'डीप ऐक्सरे' लेनी शुरू की, तभी अकस्मात् वे हृदय-रोग से पीड़ित हुए। हृदय-व्याधि का वह आक्रमण भयंकर था। भारतीय संगीत जगत् में उसने गहरी चिन्ता और आशंका की श्याम छाया छा दी थी। पंडित जी के आत्मीय परिजन, शिष्य समुदाय तथा मित्र-वर्ग की चिन्तातुरता तो अकल्प्य थी ही, किन्तु भारत भर में जहाँ भी उनकी इस गम्भीर व्याधि का समाचार पहुँचा, वहाँ के सभी संगीत-प्रेमी आकुलता के साथ उनके स्वास्थ्य लाभ के लिए प्रार्थना करने लगे। अन्त में प्रायः ३ महीने की गुरुतर अस्वस्थता के बाद वे पूर्ण स्वस्थ हुए और दीर्घ दुर्दिन के बाद भारतीय संगीत जगत् पुनः 'संगीत-मार्तण्ड' की आभा से आलोकित हुआ।

१४. रामभक्त के रूप में

योगी पिता के पुत्र होने पर भी पंडितजी के हृदय का झुकाव भक्ति की ओर ही अधिक है, यह हम देख चुके हैं। उनके इस भक्ति-प्रवण हृदय को मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् राम की मूर्ति, गुण और लीला में सहज प्रीति है। इसलिए भगवान् के सभी अवतारों में से श्रीरामचन्द्र ही उनके इष्टदेव हैं। रामचरितमानस के नवाह्न पारायण का अनुष्ठान वे २५ वर्षों तक अखंड नियमपूर्वक करते रहे हैं। सूरत के रामायण प्रेमियों ने सन् १९५० में पंडितजी के इस अनुष्ठान की बड़ी धूम धाम से रजत जयन्ती भी मनाई थी। इस पारायण में अनेक विघ्न-बाधाओं के आने पर भी पंडितजी ने नियमपालन की जो दृढ़ता रखी, वह इष्टदेव के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा की परिचायक है। कई बार १०४° बुखार में और अतिसार की भयंकर अवस्था में वे डाक्टरों के कड़े निषेध की अवहेलना करके विधिपूर्वक पारायण के लिए बैठ गये और अनन्यता के प्रभाव से उनकी अस्वस्थता सब देखने वालों को आश्चर्य चकित करती हुई क्षणों में तिरोहित हो गई। प्राणों की बाजी लगाकर नियम रक्षा करनेवाले भक्त की रक्षा किए बिना भगवान् कभी रह सकते हैं क्या? भगवान् राम के एक-पत्नी-व्रत के आदर्श को भी उन्होंने जीवन में पूरे रूप से निभाया है।

रामनाम में पंडितजी का अडिग विश्वास रहा है। एक बार जब उनकी पत्नी टॉयफॉयड से बीमार थीं और डॉक्टर प्रायः आशा छोड़ चुके थे, तब पंडितजी ने सभी चिकित्सा बन्द करा के रात भर रोगिणी के सिरहाने बैठकर रामधुन का गान किया और प्रातः काल होते ही रोगिणी की आशातीत सुधरी हुई दशा देख कर डॉक्टर लोग विस्मय से स्तब्ध हो गये। किन्तु पंडितजी के लिये उसमें आश्चर्य की कोई बात न थी क्योंकि रामनाम की अमोघता में उनका अटल विश्वास था।

प्रबल मनोवेगों को शान्त करने के लिये रामनाम का उच्चार ही एक मात्र प्रशस्त मार्ग है, ऐसी पंडित जी की दृढ़ मान्यता है। क्रोध के प्रबल आवेग के कुछ अवसर जब जब उनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन में आये हैं तब तम्बूरा लेकर रामधुन के गान द्वारा ही उन्होंने शान्ति प्राप्त की है। आत्म-शुद्धि के लिये उपवास का साधन भी उन्होंने कई बार अपनाया है।

१५. व्यक्तित्व

उन्नत ललाट, दीर्घ नासिका, रजतोज्ज्वल घुँघराले केश, पैनी दृष्टि से युक्त छोटी आँखें आभामय मुखमण्डल और प्रसन्न मुद्रा—यह उनके आकर्षक व्यक्तित्व की बाह्य रूप रेखा है। मुखमण्डल को मनुष्यके आभ्यन्तर का प्रतिबिम्ब माना गया है। पंडितजी की भव्य आकृति से उनके आन्तरिक व्यक्तित्व की आभा झलकती है। किसी भी जनसमुदाय में से उनके व्यक्तित्व की विशेषता अपनी ओर लोगों को बरबस आकृष्ट किये बिना नहीं रहती। व्यक्तित्व की वह 'विशेषता' क्या है? उसी का अल्प विश्लेषण हम यहाँ करेंगे, क्योंकि किसी भी एक शब्द द्वारा उस विशेषता को व्यक्त करना संभव नहीं।

प्राचीन भारतीय संस्कृति कि वे दृढ़ अनुरागी हैं और गुरुशिष्य भाव के आदर्श मर्यादा पालन में उनका यह भाव सर्वदा आलोकित होता रहता है। गुरु-पूर्णिमा के दिन प्रतिवर्ष गुरु-पूजन का उनका अनुष्ठान इस भाव का द्योतक मात्र है। शिष्यों के अनजान में ही बरबस उनके असीम श्रद्धा-भाव का पात्र बन जाने वाला उनका गुरुपद प्राचीन आदर्शों का ही प्रतीक है। उनमें यह प्राचीनता तो है, किन्तु उसके साथ कट्टर रूढ़िवादिता कदापि नहीं है। प्राचीन वातावरण में पलने और शिक्षा पाने पर भी नवीन ढाँचे में ढलने की उनमें अपूर्व क्षमता है। विदेश यात्रा के बाद प्रायश्चित्त का विधान उन्होंने कभी नहीं माना और न ही किसी विदेशी के हाथ से शुद्ध शाकाहार लेने में कभी द्विधा का बोध किया। विद्यादान में जाति-पाँति के बन्धनों को उन्होंने कभी स्थान नहीं दिया, सुपात्रता की कसौटी जाति नहीं, बल्कि योग्यता ही रखी।

विदेशियों के सद्‌गुणों को उन्होंने मुक्त भाव से ग्रहण किया है और समय की पाबन्दी इसका विशेष उदाहरण है। किसी भी सभा या सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होने में अथवा अपनी ओर से आयोजित किसी भी समारम्भ को आरम्भ करने में नियत समय का किंचित् भी उल्लंघन वे सह नहीं सकते और एक मिनट का भी इधर उधर होना वे अक्षम्य मानते हैं। यहाँ तक देखा गया है कि किसी समारोह के मुख्य अतिथि के पधारने में यदि विलम्ब हो रहा हो तो वे प्रतीक्षा किये बिना नियत समय पर कार्यक्रम प्रारम्भ कर ही देते हैं। काल ईश्वर का रूप है और उसके सामने कोई बड़ा नहीं है, उसकी मर्यादा का पालन होना ही चाहिये, इस मान्यता को उन्होंने विदेशों के अपने अनुभव से दृढ़ बनाया है और निश्चल रूप से हृदयंगम कर लिया है।

उनका निर्व्यसनी चरित्र उनके व्यक्तित्व का विशेष अंग है। किसी भी प्रकार के छोटे से छोटे नशे का भी सेवन न करने की उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा तो अटल है ही, किन्तु एक अन्य प्रतिज्ञा की कहानी भी उल्लेखनीय है। एक बार लाहौर में वे मित्र-मंडली में ताश खेल रहे थे। इसी बीच एक साथी का दाँव उलटा पड़ा और क्रोधावेश के मारे उस व्यक्ति के मुँह से कुछ ऐसा वाक्य निकल गया जो मर्यादाविरुद्ध था। वह वाक्य सुनते ही पंडितजी तत्काल चेत गये और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो खेल मर्यादा-भंग करने की प्रेरणा दे सकते हों, उन ताश आदि से आजीवन दूर रहने की उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की। इस प्रकार उनका एकमात्र 'व्यसन' भी छूट गया। उस प्रतिज्ञा का वे आज तक पालन करते आये हैं और आत्मीयजनों के प्रवल आग्रह के सामने भी उन्होंने कभी हार नहीं मानी।

अपने जीवन में उन्होंने जो सार्वजनिक कार्य किये हैं और जो अनेकों समारोह आयोजित किये हैं वे सब उनकी संगठन शक्ति के परिचायक हैं। इस वढ़ी हुई उम्र में भी उनका अपार उत्साह, अथक परिश्रमशीलता और असम प्रफुल्लता, जीवन के प्रति उनके पूर्ण आशावादी दृष्टिकोण के द्योतक हैं।

यहाँ पंडितजी के खान-पान तथा रहन-सहन की एक झलक भी रोचक होगी। पंडितजी बहुत ही मिताहारी हैं। पूरा भोजन तो वे दिन में एक बार ही करते हैं और रात को तो केवल दूध या थोड़ा सा और कुछ लेकर ही रहते हैं। भोजन में उन्हें तरकारियों का वहुत शौक है। दूधपाक (खीर), रवड़ी और श्रीखंड उन्हें विशेष प्रिय हैं। इनमें से खीर का स्थान सदा पहला रहता है, क्योंकि वाल्यकाल से ही उन्हें इसका विशेष शौक रहा है। उनके संन्यासी पिताजी तो दिन में केवल एक वार अपराह्न में संध्या से कुछ पूर्व भोजन करते थे। इसलिये पूरा भोजन उसी समय बनता था और पंडितजी अपने लिये प्रायः प्रतिदिन खीर बनाकर उसी से चला लिया करते थे। छाने (फटा हुआ दूध) की मिठाइयों को छोड़ कर प्रायः अन्य सभी मिठाइयाँ उन्हें पसन्द हैं, यद्यपि केवल मिठाई वे अधिक मात्रा में नहीं ले सकते। साथ ही नमकीन और खट्टी वस्तुओं में भी थोड़ा सा मीठा (चीनी, वूरा या गुड़) मिला कर ही उन्हें भोजन में रस का परिपाक मिलता है। वे कहा भी करते हैं कि अकेला नमकीन या खट्टा क्या ? उसमें मीठा, तीखा, कड़वा आदि अन्य रसों का भी मिश्रण होना चाहिए। करेले का कड़वापन उन्हें वहुत भाता है। दहीवड़े की उनकी विशेष पसंदगी उनके निकट सम्पर्क में आने वालों को सुपरिचित है। फलों में उन्हें आम, केला और चीकू विशेष प्रिय हैं। दही या छाछ की अपेक्षा दूध ही उन्हें अधिक भाता है और वचपन से ही वे उसका विपुल मात्रा में सेवन करते आये हैं। उनके खानपान पर पंजाब का काफ़ी असर पड़ा है, क्योंकि वे लाहौर में कई वर्ष तक रहे हैं। पंडितजी का दूध, घी से विशेष प्रेम और विपुल मात्रा में उनका सेवन गुजरात प्रदेश के खान-पान के सामान्य स्तर से कहीं अधिक है। जो दही खट्टा न हो उसकी चीनीवाली लस्सी उन्हें विशेप प्रिय है।

भोजन के वारे में उनकी परिमार्जित रुचि केवल षट्रस आस्वादन तक ही सीमित नहीं है, वल्कि वे स्वयं अच्छे पाककुशल भी हैं। पिता की सेवा में रहने के कारण उन्हें वचपन से ही रसोई का अच्छा अभ्यास रहा और गृहस्थ जीवन में भी बीच-वीच में पत्नी की अस्वस्थता के समय उन्हें भोजन वनाने के मौक़े आते रहते थे। अव वह अभ्यास प्रायः छूट सा गया है, किन्तु किसी विशेष वस्तु को वनाने का ढंग या उसके उपकरणों का परिमाण समझाने और बताने में वे अव भी प्रवीण हैं और इसीलिये कई वार कहा करते हैं कि वे संगीत के साथ साथ सूपविद्या (पाक विद्या) भी सिखा सकते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुद्ध शाकाहार का नियम उन्होंने विदेश यात्राओं में भी कभी नहीं तोड़ा। भले ही कई वार प्रायः भूखे रहना पड़ा हो, किन्तु अविचल भाव से उन्होंने शाकाहार के अपने सिद्धान्त का पालन सर्वदा किया है। आचार और आहार में उनकी यह दृढ़निष्ठा कई वार विदेशों में उनके संगी साथियों के विस्मय का विषय वन चुकी है।

पंडितजी की कलारुचि उनके परिधान (पोशाक) में, रहन-सहन में और घर की सजावट में सर्वत्र दिखाई देती है। छोटी-छोटी वातों में भी वे वेढंगापन या अव्यवस्था नहीं सह सकते। विस्तर पर चादर विछवानी हो या मेज़ पर मेज़पोश डालना हो तो वे हमेशा इस ओर ध्यान देते हैं कि चादर दोनों ओर एक सी लटक रही है या नहीं, मेज़पोश के चारों कोण एक से आये या नहीं। कोई चित्र लटकाना हो तो भी वह दीवार के वीचों-वीच ही आना चाहिये। यहाँ तक कि कुर्सियाँ और मेज़ लगाने में भी वे कोण और केन्द्रस्थता को ओर पूरा ध्यान रखते हैं। ज़रा सा इधर-उधर होते ही फ़ौरन उनकी आँख उस कसर को देख लेती है और उस वस्तु को तत्काल ठीक कराये विना उन्हें चैन नहीं पड़ता।

इस कलारुचि के साथ सगी वहन की तरह स्वच्छता जुड़ी हुई है। इसलिये पंडितजी का स्वच्छता की ओर सदैव बहुत ही अधिक ध्यान रहता है। किसी प्रकार की गन्दगी, घर में थोड़ा सा भी कूड़ा कर्कट, दीवारों या छतों में कहीं भी मकड़ी का जाला—ये सब उनके लिये असह्य हैं। कपड़ों की धुलाई में भी स्वच्छता की ओर उनका पूरा ध्यान रहता है और वे कहा भी करते हैं कि अपने गुरुदेव की धोती वे इस ढंग से धोते थे और इस प्रकार से उसकी तह वनाते थे कि देखने पर यही मालूम देता था मानो धोती अभी वाज़ार से खरीद कर लाई गई हो। उसी प्रकार वर्तनों के माँजने में भी पूरी सफ़ाई रहे, नहाने तक के वर्तन चमचमाते हुए रहें यह उनका आग्रह रहता है। स्वच्छता की ओर उनके इस सूक्ष्म ध्यान के कारण घर और महाविद्यालय के सभी नौकर चाकर सफ़ाई में तत्पर रहने को वाध्य होते हैं।

हृदय-व्याधि से मुक्त होने के वाद सामान्यतः उनका स्वास्थ्य ठीक ही है, किन्तु घुटनों का दर्द अभी तक ठीक नहीं हुआ है और वीच-वीच में अतिसार की पुरानी शिकायत भी उभर आती है। निद्रा की कमी की शिकायत भी कभी-कभी हो आती है। हृदय-रोग के वाद से रात्रि को अधिक जागरण उन्हें सहन नहीं होता है। दिन में थोड़ा सा आराम लेने की उन्हें आदत है।

नदी में घंटों तैरने का तो उन्हें वचपन से ही चाव रहा है, साथ ही घर में स्नान करते समय भी शीतल जल का वे वहुल प्रयोग करते हैं। सर्दियों में भी अस्वस्थता को छोड़कर वे सदा शीतल जल का ही प्रयोग करते हैं और खूब जी भर कर नहाना उनकी विशेष आदत है। उसी प्रकार वर्षा में नहाना उन्हें प्रिय है। गर्मी के वाद वर्षा शुरू होते ही उसकी धारा के नीचे बैठने का लोभ संवरण करना मानो उनके लिये कठिन हो जाता है।

जल तत्त्व के साथ-साथ आकाश तत्त्व से भी उन्हें विशेष प्रेम है। शब्द आकाश का गुण है और इसलिये संगीत का आकाश से सीधा सम्वन्ध है। अतः वे कहा करते हैं कि संगीतकार के लिये मुक्त आकाश का सेवन बहुत ही आवश्यक है। जितनी अधिक देर तक अवरुद्ध वातावरण को छोड़कर मुक्त आकाश के तले रह सकें उतना ही अच्छा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी प्रकार वायु से भी उन्हें बहुत लगाव है। जब वायु पर्याप्त मात्रा में न हो तो किसी भी कार्य में वे चित्त नहीं लगा सकते और जहाँ हवा का झोंका आया कि वे उसे एक चेतन प्राणी मान कर "आई ! आई !" कह कर चिल्ला उठते हैं। यदि बहुत देर तक वायु बन्द रहे तो "आओ ! आओ !" कह कर उसका आवाहन भी करने लगते हैं। समुद्र के किनारे की तेज़ हवा जो कइयों को आवश्यकता से अधिक मालूम देती है वह पंडितजी को बहुत सुखद लगती है। जल, वायु और आकाश का यह विपुल सेवन उन्हें प्रकृति का अंतरंग साथी बनाने में सहायक है। इसके अलावा प्रकृति के लाडले पक्षियों से भी उन्हें बहुत ममत्व है। किसी पक्षी की पुकार, चहचहाहट या सुरीली तान सुनकर वे हर्ष-विह्वल हो उठते हैं और तत्काल उसी स्वर को दोहरा कर प्रकृति की गोद में पलते हुए इन सुरीले गायकों के साथ स्नेह-संबंध जोड़ लेते हैं। पक्षियों की सुरीली तानों में कहीं उन्हें दरबारी के स्वरों का दर्शन होता है तो कहीं स्नेह भरी पुकार का। बहुधा वे कहा करते हैं, "ये पक्षी भी आपस में बातें करते हैं। देखो, कभी वे एक से स्वर में नहीं बोलते। स्नेह, क्रोध, करुणा, विजय, उल्लास—ये सब भावनाएँ उनके स्वरों में मूर्तिमान होती हैं आवश्यकता है केवल सुनने वाले कानों की और अनुभव पाने वाले हृदय की।" सामान्य कौआ जिसका स्वर प्रायः कर्कश माना जाता है, उसकी बोली में भी उन्हें भिन्न-भिन्न भावों के दर्शन हुआ करते हैं। एक बार जब वे मालिश करा रहे थे, तब पास के पेड़ की डाल पर एक कौआ बैठकर कुछ बोलने लगा और बार-बार एक ही ढंग से बोलता रहा। पंडितजी को भीतर से ऐसा लगा मानों वह उनसे ही कोई विशेष बात कहने आया हो। जब कौआ बहुत देर तक बोलता ही रहा तब अंत में पंडितजी ने कहा, "भाई तुमने जो कुछ कहा वह हमने सुन लिया, वैसा ही करेंगे अब तुम जा सकते हो।" और संयोग भी ऐसा हुआ कि पंडितजी के इतना कहते ही कौआ फुर्र से उड़ गया। क्यों न हो, पशु-पक्षियों की आवाज़ से स्वरों की उत्पत्ति मानने वाले भारतीय संगीत के जो आचार्य हैं वे प्रकृति के इन सहज गायकों का गान सुने बिना, उसका माधुर्य चखे बिना भला कैसे रह सकते हैं ?

प्रकृति की गोद से साक्षात् प्रेरणा लेने वाले इस कलाकार के स्वभाव की भी हम थोड़ी सी झाँकी पालें। जो लोग उनके निकट परिचय में नहीं आये हैं वे प्रायः ऐसी धारणा रखते हैं कि पंड़ितजी का स्वभाव अहंकार से भरा हुआ है, किन्तु उनके सान्निध्य का सेवन करनेवाले यह जानते हैं कि संगीत या संगीतकार की अवज्ञा, कला की उच्चता की अवहेलना उन्हें असह्य है और इस असह्यता के कारण वे कलाकारोचित भावावेश में जो वाग्व्यवहार या बाह्य क्रिया कर बैठते हैं, उसे ही अहंकार या अभिमान समझ लिया जाता है। वास्तव में उनका यह भावावेश अपने व्यक्तिगत सम्मान की नहीं, अपितु कला और कलाकार के समुचित स्तर की रक्षा के लिये ही होता है। उदाहरण के लिये अपने गृहस्थ जीवन के आरम्भ काल में एक बार वे गोंडल के महाराजा की हीरक-जयन्ती के अवसर पर निमन्त्रित हुए। नई गृहस्थी जमाने के लिये उस समय अर्थ की बहुत ही आवश्यकता थी और यह निमन्त्रण एक वरदान के रूप में आया था। पंड़ितजी जब सभा मंडप में पहुँचे तब देखा कि मंच पर विशेष राजकीय श्रोताओं के लिये उच्च आसन लगे हुए थे, किन्तु गायक कलाकारों के लिए नीचे आसन की व्यवस्था की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गई थी। उन्होंने तत्काल कहा कि कला का प्रदर्शन करते समय वे नीचे आसन पर कभी नहीं बैठेंगे और यदि श्रोताओं के आसन के समकक्ष या उससे कुछ ऊँचे आसन की व्यवस्था न की गयी तो वे अपना कार्यक्रम न देंगे। इस पर संयोजक ने कहा कि अन्य सभी कलाकार तो उसी प्रकार गा चुके थे और इसलिये तब व्यवस्था बदलना अनावश्यक था। संयोजक यहाँ तक बोल गये कि यदि ऐसा मालूम होता तो पंडितजी को बुलाया ही न होता। यह उत्तर सुनते ही पण्डितजी का पुण्य प्रकोप प्रज्वलित हो उठा और पेशगी में मिले हुए रूपयों के नोट उन्होंने तत्काल संयोजक के सामने ज़ोर से फेंक दिए और अपने वापस चले जाने का निर्णय सुनाया। मंडप में उपस्थित जन समुदाय नोटों का यह उछालना और बिखेरना देखकर विस्मित रह गया। आख़िर महाराजा साहब की आज्ञा से संयोजक को झुकना पड़ा और आसन की उचित व्यवस्था की गई। इस घटना से यह स्पष्ट है कि पंडितजी को अपने व्यक्तिगत सम्मान की चिन्ता नहीं थी। उन्हें तो भगवती सरस्वती की मर्यादा की ही चिन्ता थी और इसीलिये उन्होंने कहा भी था, "गाना पूरा होने के बाद मुझे ज़मीन पर भी बैठने में आपत्ति न होगी, किन्तु कला के प्रदर्शन के समय कला और कलाकार का अपमान मैं नहीं सह सकता।" अर्थ संकट की उस विकट स्थिति में पंडित जी की यह स्वमानिता उनके स्वभावगत तेज की परिचायक है। उनकी स्वाभाविक स्पष्टवादिता भी बहुत बार ग़ैरसमझी के कारण अहंकार की अभिव्यक्ति समझ ली जाती है।

स्वमानिता और तेज के साथ साथ पंडितजी में कृतज्ञता भी कूट कूट कर भरी हुई है। जिन पारसी सज्जन ने उन्हें गुरुदेव पंडित विष्णु दिगम्बर जी के पास पहुंचाया था, उनके उपकार को वे अभी तक नहीं भूले हैं और कृतज्ञ हृदय से कहा करते हैं कि लाखों रुपयों से भी वह ऋण चुकाया नहीं जा सकता। इसी प्रकार अनुगत जनों की सेवा को भी वे भूलते नहीं हैं। आतिथ्य की भारतीय भावना भी उनके स्वभाव में समाई हुई है और अतिथि सेवा उनके एकाकी गृहस्थ जीवन में भी अक्षुण्ण रही है।

पंडितजी के संगीतमय व्यक्तित्व के साथ उनके चरित्र की जो एक विशेषता जुड़ी हुई है उसके अवलोकन के बिना यह व्यक्तित्व-विश्लेषण अधूरा ही रह जायगा। संगीतकार के रूप में उनका जो सार्वजनिक जीवन रहा है, उसमें कई अवसर ऐसे आये हैं जो उनकी गुणग्राहिता और द्वेषहीनता के परिचायक हैं। अन्य गायकों के अनुयायियों की संकुचित वृत्ति के कारण कई बार ऐसे वातावरण की रचना हुई जिसमें पंडितजी को खुले रूप से उन गायकों के साथ स्पर्धा में उतरना पड़ा। इस स्पर्धा में द्वेष भाव को पंडितजी ने कभी भी हृदय में स्थान नहीं दिया और केवल गुण प्रदर्शन द्वारा ही विजय प्राप्त करने का सदैव ध्येय रखा। स्पर्धा के प्रायः सभी मौक़ों पर विरोधी गायक के साथ स्नेह और सौहार्द का सम्बन्ध उन्होंने प्राप्त किया और परस्पर गुण की प्रशंसा तथा सराहना द्वारा स्पर्धा भाव को तिरोहित किया। कई लब्धप्रतिष्ठ कलाकारों के साथ स्पर्धा के मौक़े आने पर भी अन्त में प्रायः सभी से पंडितजी को हार्दिक प्रशंसा मिली और मुक़ाबलेबाज़ी या मनमुटाव का अन्त हुआ। प्रायः सभी लोग पंडितजी के गले से गला और हृदय से हृदय लगा कर मिले। इलाहाबाद को एक कॉन्फ़रेन्स में पंडितजी के गान के बाद रजबअली ख़ां साहब ने स्वयं पास आकर भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। यहाँ एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बात और ध्यान देने योग्य है और वह यह कि सभी गायकों या वादकों में पंडितजी ने उनकी विशेषताएँ या गुण देखने का सदा यत्न किया है। द्वेष परवश होकर किसी भी कलाकार की कला को तुच्छ भाव से देखना उन्होंने कभी नहीं सीखा। बाह्य परिस्थितियों के कारण जिनसे विरोध रहा हो, उनकी कला की विशेषताओं की भी पंडितजी ने कभी अवहेलना नहीं की। जिसकी गायकी में जो अंग आनन्दप्रद लगा हो उसकी सदैव उन्होंने प्रशंसा की है और यदि कोई भी अंग आनन्द देने वाला न लगे तो उस सत्य को प्रकट करने में भी वे कभी हिचकिचाये नहीं। वे कई बार कहा करते हैं कि न जाने क्यों उन्हें...की गायकी में आलापचारी या बोलतान या भावरस की अभिव्यक्ति या लयकारी में से किसी का भी आनन्द नहीं मिल पाया। उनकी गायकी की विशेषता ढूँढने का बहुत प्रयत्न करने पर भी उन्हें एक विशेष ढंग की तानों के सिवाय और कुछ मिल नहीं सका, ऐसा वे स्पष्ट कहा करते हैं। एक बार बम्बई में पंडितजी के गान के समय...की इच्छानुसार उन्हीं के अनुयायियों ने उन्हें ख़ास तौर पर कोल्हापुर से बुलाया था।......के प्रशंसक उनकी गायकी की सबसे बड़ी विशेषता यही बताया करते थे कि उनके गाये हुए राग को पहचानना असंभव सा होता था। वास्तव में तो यह कोई गुण नहीं, दोष ही कहा जाना चाहिये क्योंकि राग की शुद्धि और स्पष्टता जुड़वाँ बहनों की तरह जुड़ी हुई रहती हैं और एक के बिना दूसरी का रहना असंभव है। पंडितजी इस बात से भलीभाँति परिचित थे और इसलिये उस दिन उन्होंने कुछ विशेष अपरिचित राग ही चुने और...की भाँति राग का नाम बताने से यह कह कर इन्कार किया कि...से ही पूछ लिया जाय। इन्टरवल तक बैठने के बाद...यह कहते हुए उठ कर चले गये "भाई ग़ज़ब का गवैया है, ग़ज़ब की तैयारी है।" शायद उन्हें यह भी आशंका हुई हो कि पंडितजी के गाये हुए रागों का नाम यदि नहीं बता सकेंगे तो कठिनाई में पड़ जायँगे। इस प्रकार निराधार दम्भ का दमन करने में पण्डितजी सदैव तत्पर रहे हैं, किन्तु वास्तविक गुण की प्रशंसा करने से भी वे कभी नहीं चूके।

वार्तालाप में उनकी स्वाभाविक प्रत्युत्पन्नमति (wit) प्रतिस्पर्धी गवैयों को निरुत्तर करने में सदा सहायक रही है। उदाहरण के लिये'''की मनोवृत्ति को स्पष्ट करते हुए एक बार पंडितजी ने उनसे कहा, "''' हम क्या गायँगे ? हम तो 'भजनीक' के शिष्य ठहरे। हाँ, लेकिन फिर भी हर गुल के चाहने वाले होते हैं।" इस पर...बोले, "ठीक है, बशर्ते कि उस गुल में बू हो।" पंडितजी ने तत्काल उत्तर दिया, "बशर्ते कि सूँघनेवाले के नाक हो।" इस उत्तर की मार्मिकता सहजगम्य है।

ज्योतिष में पंडितजी का विश्वास पग पग पर दिखाई दिया करता है। किसी भी शुभारम्भ के लिये वे शुभ तिथि और शुभ मुहूर्त देखे बिना नहीं रह सकते। यह सब स्वयं ही देख लेने का उन्हें अभ्यास है। अपने दीर्घजीवी होने का उन्हें जो अटल विश्वास है वह उनके अनुगत वर्ग, मित्र समाज और आत्मीयजनों के लिये बहुत बड़ा आश्वासन है। अपने कानों की बड़ी लोल दिखा कर वे प्रायः कहा करते हैं कि माता के समान ही वे अवश्य दीर्घायु होंगे। हृदय-रोग के प्रबल आक्रमण के समय भी उनका यह विश्वास अडिग रहा था और चिन्तामग्न स्वजनों को अवलम्ब देता रहा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माता की दीर्घायु की यहाँ चर्चा चलते ही उनके अवसान का थोड़ा सा ब्योरा दे देना आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि उससे पंडितजी के चरित्र पर भी काफ़ी प्रकाश पड़ेगा। जिस जहाज ग्राम से जेठ के अत्याचार के कारण माताजी को पति और बालकों के साथ ख़ाली हाथ निकल जाना पड़ा था उसी जहाज ग्राम में पुनः ठाठ से बस जाने की उनकी साध पंडितजी ने पूरी की थी। एक बार फिर से वे उसी ग्राम में ज़मीन जायदाद की स्वामिनी बनीं और आराम से वहाँ रहने लगीं। बीच बीच में पंडितजी वहाँ जाकर उनसे मिल आते थे और वे सुख से सम्पत्ति का उपभोग करती थीं। फ़रवरी १६५६ में बनारस में पंडितजी को उनकी अस्वस्थता का समाचार मिला और वे तत्काल गांव के लिये रवाना हो गए। माता के प्रति कर्तव्य-भावना को उन्होंने कभी भी डिगने नहीं दिया। कुछ दिन बाद माता के ज़रा स्वस्थ होने पर चिकित्सा आदि की पूरी व्यवस्था करके वे बनारस लौटे ही थे कि पुनः उन्हें माता की अस्वस्थता का तार मिला। इस बार भी उन्होंने तत्काल प्रस्थान कर दिया। जब वे घर पहुँचे तो माता होश में थीं और मानों उन्हीं की प्रतीक्षा में किसी प्रकार चेतना को सँभाले हुए थीं। पंडितजी को अन्तिम आशीर्वाद देकर उन्होंने सब उपस्थितजनों से 'जयश्रीकृष्ण' कह कर विदा ली और आँखें मूँद कर मौन हो गईं। प्रायः डेढ़ दो दिन इसी अवस्था में रहने के बाद उन्होंने शान्तिपूर्वक देह का त्याग किया। अपने जीवन में उन्होंने १२-१२ चांद्रायण व्रत करके जो कठोर तप किया था उसके कारण उन्हें विश्वास था कि प्राण-त्याग में उन्हें कोई कष्ट न होगा। और सचमुच वैसा ही हुआ। ६७ वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हुआ और उससे कुछ महीने पूर्व तक वे भली भाँति चल फिर सकती थीं और देखने सुनने में भी उन्हें कोई कठिनाई न थी। यों तो १०८ वर्ष जीने की उन्हें पूरी आशा थी और उनका स्वास्थ्य उस आशा की गवाही देता था, किन्तु एक बार रात्रि के अँधेरे में पैर फिसल कर गिर जाने के कारण कमर की हड्डी में जो गहरी चोट आई उससे सँभलना उस आयु में असंभव था।

माता की अन्त्येष्टि क्रिया पंडितजी ने ख़ूब धूमधाम से की और तेरहवें के दिन पूरे ग्राम को भोजन के लिये निमंत्रित किया था। इस प्रकार माता की अन्तिम इच्छा उन्होंने पूरी की और भोजन के लिये आये हुए सभी लोगों को माता के स्मृति-चिह्न के रूप में एक-एक बर्तन देने का रिवाज़ भी निभाया।

पंडितजी के भाइयों में से आज कोई नहीं है। बड़े भ्राता पं० बालकृष्णजी का सन् १६५१ के आरम्भ में अवसान हो गया था। उनसे छोटे भाई पं० रविशंकर तो युवावस्था में ही अचानक घर छोड़ कर चले गये थे और आज तक उनका कहीं पता न चल सका। वे बचपन से ही एकान्तसेवी, वेदान्त के गूढ़ विचारों में निमग्न और मौनधारी थे। किसी से उन्हें कोई सरोकार न था। भोजन करते समय भी सिर हिला कर 'हाँ' या 'ना' का भाव माता को समझा दिया करते थे। इसी अवस्था में एक दिन अचानक वे किसी से कुछ भी कहे बिना घर से चले गये। छोटे भाई पं० रमेशचन्द्र पंडितजी के प्रथम यूरोप प्रवास के समय तक उनके साथ ही रहते थे। उस बार यूरोप से लौटने के बाद वे पंडितजी से अलग हो गये और तभी से बिरला परिवार में कार्य करने लगे। मार्च सन् १६५५ में उनका प्रायः ५० वर्ष की अवस्था में देहान्त हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गया। पंडितजी की एकमात्र बहन का तो पिता से भी दो तीन वर्ष पूर्व ही अवसान हो गया था।

इस प्रकार माता की मृत्यु के बाद से पंडितजी अपने परिवार में अकेले रह गये हैं, किंतु दिव्य स्वर लहरियाँ जिसे घेरे रहती हों, राग रागिनियों की भावमूर्तियाँ जिससे अठखेलियाँ करती हों, लेखनी का प्रवाह जिसके वश में हो, शास्त्रों का मर्म जिसके करतल पर हो, अनुगत समुदाय की श्रद्धा-भावना का जो पात्र हो, वह भला कभी एकाकी कहला सकता है? सन्तान का अभाव एवं गार्हस्थ्य जीवन से वंचित होना, ये दो कमियाँ उनके जीवन में सदैव खलती रही हैं, किन्तु उनकी अद्वितीय कला की प्रतिनिधि शिष्य-परम्परा एवं उनके शास्त्रीय सिद्धान्तों की रक्षक शास्त्र-परम्परा इन दोनों अभावों को अवश्य पूरा करेंगी, इसमें संदेह नहीं।

लक्ष्मी और सरस्वती को परस्पर ईर्ष्यालु माना गया है। इसीलिये भारतीय संस्कृति में यह दृढ़ मान्यता रही है कि ये दोनों कभी एकत्र नहीं रह सकतीं। सरस्वती के पूजकों के प्रति लक्ष्मी के प्रसाद का अभाव जहाँ एक ओर पंडितजनों के लिये सन्तोष धर्म का संदेश देता रहा है, वहाँ दूसरी ओर लक्ष्मी के कृपा-भाजनों में सरस्वती के अनुग्रह का पूरा अभाव देखा गया है। किसी राजा की स्तुति में कही हुई निम्नलिखित पंक्तियाँ लक्ष्मी और सरस्वती के एकत्र अवस्थान की अतिशय विरलता को बड़े अनूठे ढंग से व्यक्त करती हैं—

'सरस्वती स्थिता कण्ठे लक्ष्मी करसरोरुहे।
राजेन्द्र! कुपिता कीर्तिस्तेन देशान्तरं गता॥'

अर्थात् जो सरस्वती और लक्ष्मी कभी स्वभावतः ही साथ नहीं रहतीं, वे जब स्नेह भाव से एकत्र पति के साथ रहने लगीं तो तीसरी पत्नी कीर्ति के लिये कहीं स्थान न रहा और वह कुपित होकर देशान्तर को चली गई।

यह स्तुतिवाक्य कुछ परिवर्तन के साथ पंडितजी पर भी घटित होता है। सरस्वती और लक्ष्मी के सपत्नी-मत्सर के लिये तो पंडितजी के व्यक्तित्व में अवकाश ही नहीं रहा। सरस्वती ने जब अपना निःसीम वात्सल्य उन पर उँडेला तभी वे स्वयं मत्सर भाव से बहुत ऊपर उठ गईं। यहाँ तक कह सकते हैं कि लक्ष्मी को पंडितजी का वरण करने की प्रेरणा सरस्वती ने ही दी। इसीलिये लक्ष्मी उन्हें पूज्य मानकर अनुगत बनी हैं और वैभव विखेर कर सेवारत रहती हैं। इन दोनों के वात्सल्यभरे इस स्नेह-संबंध में बिचारी कीर्ति को उनके पास ही भला कहाँ स्थान मिलता और इसीलिये वह देश देशांतरों में व्याप्त हो गई है। विद्या, धन और कीर्ति के विपुल ऐश्वर्य से अलंकृत इन महाभाग की महत्ता इसी में है कि उनके व्यक्तित्व में लक्ष्मी सरस्वती की चेरी बन कर रही है और इसीलिये वैभव के विलास में भी ब्राह्मणत्व की पूरी रक्षा हुई है।

१६. संगीत की विशेषताएँ

पंडितजी के संगीत की सम्मोहनी शक्ति के मूल में क्या है जिसने उन्हें स्वर का जादूगर बना रखा है? कोई उनके कंठ की विशेषता को यह श्रेय देंगे, तो कोई अभ्यास से प्राप्त उनकी सिद्धि को इसका कारण बतायेंगे, किन्हीं को उनकी भावुकता ही अन्य सब बातों के ऊपर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिखाई देगी, तो किन्हीं को उनकी विद्वत्ता पर अधिक आस्था होगी। किन्तु वास्तव में इन सबमें से कोई भी एक बात अकेली उनके संगीत की अनुपमता को स्पष्ट नहीं कर सकती। साहित्य-शास्त्र में रस के लिये 'पानक रस-न्याय' का सादृश्य दिखाया गया है अर्थात् जिस प्रकार 'पानक' (मसालेदार शर्बत जैसा पेय विशेष) का आस्वादन करने पर यह नहीं बताया जा सकता कि दही, इलायची, कपूर, चीनी इत्यादि में से किस एक उपकरण का विशेष स्वाद आ रहा है, बल्कि सब वस्तुएँ मिल कर एक अभिनव और अनिर्वचनीय रस की सृष्टि करती हैं, उसी प्रकार साहित्य में रसबोध भी विभाव, अनुभाव, संचारी आदि सभी उपकरणों से भिन्न एक अनिर्वचनीय आनन्द का द्योतक है। यही बात पंडितजी के संगीत के लिये भी उतनी ही सत्य है। कंठ की विशेषता, आलापों की भावात्मकता, बोलतानों और तानों की विविधता, लयकारी की चमत्कारिता, भावनाओं की बहुलता इत्यादि गायकी के सभी तत्त्व मिलकर जिस अलौकिक आनन्द में श्रोताओं को निमज्जित करते हैं, उस अनुभव में इन तत्वों को पृथक्-पृथक् श्रेय देना असंभव है; फिर भी समझने के लिये जिस प्रकार साहित्य-शास्त्र में विभाव, अनुभाव इत्यादि की चर्चा की गई है, उसी प्रकार हम भी यहाँ पंडितजी की गायकी के तत्त्वों का संक्षेप में विश्लेषण कर लें।

पंडितजी की गायकी की गुरु-परम्परा ग्वालियर के भारत प्रसिद्ध खाँ साहब हद्दूहस्सू खाँ के घराने से साक्षात् संबन्ध रखती है। पंडितजी के दादागुरु पं० बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर इस भारत-विख्यात गायकी को महाप्रयास से महाराष्ट्र में लाने वाले आद्य व्यक्ति थे। उनके परम सुयोग्य शिष्य गुरुदेव पं० विष्णु दिगम्बर जी से उस गायकी की शिक्षा पंडितजी ने पाई है। ख्याल गायकी ही इस परम्परा की विशेषता है, किन्तु स्वर के स्थैर्य और लय की विविधता की साधना के लिये ध्रुवपद अंग की शिक्षा भी इसमें आवश्यक मानी गई है। पंडितजी मुख्यतः ख्याल गायक होते हुए भी ध्रुवपद अंग और ठुमरी अंग का सफल प्रदर्शन कर सकते हैं। ठुमरी को विशेष श्रृंगारिकता के कारण गुरुदेव पं० विष्णु दिगम्बरजी ने अपनी शिष्य-परम्परा में उसे कभी प्रोत्साहन नहीं दिया। गुरुदेव ने भजन-गान की जो नई परम्परा शास्त्रीय संगीत में चलाई थी उसे ही आगे बढ़ाकर पंडितजी ने अपनी एक ऐसी व्यक्तिगत शैली का विकास किया है जिसने उन्हें इस क्षेत्र में अद्वितीय बनाकर छोड़ा है। उनके 'जोगी मत जा' 'मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो' 'रे दिन कैसे कटि हैं' 'कन्हैया नाव करो मोरी पार' इत्यादि एक-एक भजन अकेले ही उन्हें अमर बनाने के लिये पर्याप्त हैं। लोक-हृदय को द्रवित करके आँसुओं की बाढ़ ला देने वाले ये भजन जिस पावन वातावरण को खड़ा करते हैं, वह गूँगे के गुड़ की भाँति अनिर्वचनीय ही है। शास्त्रीय संगीत के मेल से इतनी गहरी हृदयस्पर्शिता अन्यत्र दुर्लभ है। उसी प्रकार देव स्तुति-विषयक श्लोकों के गान में भी पंडितजी अद्वितीय रूप से सिद्धहस्त हैं। उस गान में संस्कृत भाषा के सौष्ठव की रक्षा के साथ-साथ शास्त्रीय संगीत का जो अपार आनन्द निहित रहता है, वह एक अपूर्व वातावरण की सृष्टि करता है।

भजन और श्लोकगान के अतिरिक्त पंडितजी की परम लोकप्रिय गान शैली का एक और भी विशेष अंग है और वह है उनका 'वंदे मातरम्'। पहली बार जब कलकत्ता के कांग्रेस-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिवेशन में उन्होंने यह राष्ट्रगीत गाया था तब पत्रकारों ने जनमानस को प्रतिबिम्बित करते हुए लिखा था, "आज यदि श्री बंकिमचन्द्र जी जीवित होते तो वे पंडितजी को सिर माथे उठा लेते।" स्व० बंकिमचन्द्र जी के इस अमर राष्ट्र-गीत में पंडितजी की दिव्य स्वर योजना ने नवीन ओज और प्रगाढ़ देशभक्ति की भावना भर कर उसे द्विगुणित अमर बनाया है। इस गान की लोकप्रियता के लिये तो इतना ही कह सकते हैं कि सर्वसामान्य जनता के लिये यह गीत पंडित जी के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है, अनुकूल अवसर पाते ही पंडितजी के इस गीत की माँग करना जनता के लिये स्वाभाविक बन चुका है। उनके ओजपूर्ण कंठ-स्वर में मृत-संजीवनी का बल है और मातृभूमि की वंदना के स्वरों में गौरव की आभा है। 'कोटि-कोटि कंठकल-कलनिनादकराले' में कोटि कंठों के कराल नाद को अपने एक कंठ में निनादित करने वाले, 'द्विस्त्रिंशत्कोटिभुजैर्धृत खरकरवाले' में कोटि-कोटि भुजाओं की तलवार को मूर्तिमन्त करने वाले, 'के बले' की कड़क और 'माँ तुमि अबले' की दौर्बल्यपूर्ण मृदुता को स्वर के चढ़ाव उतार और काकु-भेद द्वारा अभिव्यक्त करने वाले तथा 'बहुबलधारिणीं' में पुनः माता की विपुल शक्ति को ओजमय स्वरों में निबद्ध करने वाले ये स्वर-सम्राट् जनता के हृदय पर गीत की सारी कड़ियों की अमिट छाप अंकित करने में पारंगत हैं। पंडितजी की यह असीम स्वर-शक्ति देख कर राष्ट्र-पिता गांधीजी ने एक बार कहा था, "जो काम मेरे कई भाषणों से नहीं हो सकता, वह पंडित जी के एक गान से हो सकता है।"

पंडितजी ने अपनी ख्याल गायकी में गुरुदेव के आदर्श को अक्षुण्ण रखा है। विद्यार्थी काल से ही वे सदैव गुरुदेव का आदर्श सामने रख कर अभ्यास करते रहे हैं और गुरुदेव के कालके जो वयोवृद्ध सज्जन आज विद्यमान हैं वे सभी निष्पक्ष भाव से यह मानते हैं कि गुरुदेव की पूरी गायकी पंडितजी में ही उतरी है; किन्तु गुरुदेव के आदर्श के प्रति पंडितजी की इस निष्ठा ने उन्हें कभी संकुचित दृष्टि नहीं दी। उन्होंने जहाँ भी ग्रहण करने योग्य कुछ देखा उसे अवश्य ग्रहण किया और अपनी गायकी में उन तत्त्वों का इस प्रकार विनियोग किया जिससे वे सब उनकी शैली में दूध में शर्करा की भाँति घुल कर एक हो गये। उनकी इस भ्रमर-वृत्ति के कुछेक उदाहरण इस प्रकार हैं।

जालंधर में करीम बख्श नामक एक पागल गवैये थे जो पहले काश्मीर के दरबारी गायक रह चुके थे। एक बार हरवल्लभ के मेले के अवसर पर वे रास्ते में पंडितजी को मिले और अपनी आदत के अनुसार 'एक पैता' (पैसा) माँगने लगे। पंडितजी ने कहा, "पैसा नहीं रुपये दूँगा लेकिन कुछ गाओ।" पागल ने गाना शुरू किया। भीमपलासी के सुर वह उल्टे सीधे क्रम से लगा रहा था, जिनमें गायकी का कोई अंग नहीं था; किन्तु बीच बीच में वह किसी भी सुर पर इस ढंग से साँस तोड़ता था जिससे एक गहरा दर्द टपकता था। इस प्रकार स्वरों को तोड़ कर भावाभिव्यक्ति की कला पंडितजी ने तुरन्त वहाँ से उठा ली।

इसी प्रकार पंडितजी के विद्यार्थी जीवन में ख़ाँ साहब हद्दू हस्सू ख़ाँ के सुपुत्र औलिया रहमत ख़ाँ साहब गुरुदेव के पास कई बार महीनों के लिये रहने आया करते थे। जीवन की उत्तरावस्था में वे विक्षिप्त से हो गये थे, किन्तु उनकी गायकी की विशेषता यानी आलापचारी की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावुकता उस विक्षिप्तावस्था में भी ख़ूब खिलती थी और वे संगीत के पूरे कार्यक्रम तक दिया करते थे। पंडितजी ने उनकी ख़ूब सेवा की और आलापचारी की वह विशेषता अपनी शैली में घोल ली। सार्वजनिक जलसों में रहमत खाँ साहब के पीछे तानपूरा छेड़ने और उनको साथ देने के मौक़े पंडितजी को मिले थे। यह साथ वे इतनी अनुकूल तैयारी से देते थे कि पुराने गवैये पूछ बैठते, "क्या ये ख़ाँ साहब के शार्गिद हैं ?" तब महफ़िल में बैठे हुए पं० भास्करराव बखले कहते, "नहीं शागिर्द तो विष्णु दिगम्बरजी के हैं, लेकिन घराना एक है न, इसलिये गायकी में ये पूरा साथ दे रहे हैं।" पंडितजी अपने दादागुरु पं० बालकृष्ण बुआ की भी जी भर कर सेवा करते थे और सदैव उन्हें प्रसन्न करके उनसे कुछ प्राप्त कर लेने की साध रखते थे। कई पुरानी चीज़ें उन्होंने दादागुरु से सीख कर याद की थीं, ऐसा वे कहा करते हैं।

इसी प्रकार अन्यत्र जहाँ से भी जो नई और वांछनीय बात उन्हें मिली उसे ग्रहण करके अपनी गायकी की शैली में उसका यथास्थान उपयोग उन्होंने किया है। गुरुदेव से साक्षात् (सीना-बसीना) पाई हुई विद्या को अभ्यास से और भ्रमर-वृत्ति से उन्होंने सदैव विकसित और अलंकृत किया है। किन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि कहीं से भी ग्रहण की हुई बात उनकी शैली में बाहर से जुड़ी हुई सी कभी भी मालूम नहीं पड़ती; बल्कि 'पानकरस-न्याय' से पूरी शैली में घुल कर रसास्वाद में चमत्कार उत्पन्न करती है। उनकी इस वृत्ति द्वारा गुरुदेव के प्रति उनकी एकनिष्ठा में कोई अन्तर पड़ने को कहीं अवकाश नहीं रहा है। विद्या का विकास और संवर्धन तो प्रत्येक शिष्य का परम कर्तव्य होना चाहिए जिसे पंडितजी ने पूरी तौर पर निभाया है।

गुरुदेव के प्रति उनके अनन्य भाव का एक उदाहरण यहाँ स्मरणीय है। एक बार··· ने ज़रा घुमा फिरा कर पंडितजी से उनका शिष्यत्व ग्रहण करने का अनुरोध किया। तब पंडितजी ने जो उत्तर दिया वह स्वयं उनकी एकनिष्ठा कह देगा, "···साहब, गुरुदेव के पास से मुझे इतनी विद्या मिली है कि अब किसी अन्य को गुरु मानना असंभव है। यदि आपके पास १०-५ राग ऐसे होंगे जो हमें अपने घराने में न मिले हों तो हमारे पास भी गुरुदेव से मिले हुए ऐसे अनूठे राग हैं जो आपको अपने घराने से न मिले होंगे। हमें गुरुदेव से ऐसी शिक्षा मिली है कि इस प्रकार के नये राग तो हम सुन कर ही फ़ौरन उठा सकते हैं। इतनी छोटी सी बात के लिये गुरु-परम्परा (घराना) नहीं छोड़ी जा सकती।"

उनकी गुरुनिष्ठा का एक दूसरा पहलू भी उल्लेखनीय है। गुरुदेव पं० विष्णु दिगम्बरजी अपनी उत्तरावस्था में ख्याल इत्यादि का गान छोड़कर केवल भक्ति भाव भरे भजन और राम-धुन भिन्न-भिन्न रागों में गाया करते थे। इस कारण कई गवैये उन्हें 'भजनीक' कह कर कुछ अवज्ञा या अनादर का भाव व्यक्त करने लगे थे। गुरुदेव के इस निराधार अनादर को भला तेजस्वी शिष्य कैसे सहन कर सकता था ? इसलिये पंडितजी ने स्वयं अपनी सुदृढ़ गायकी का लोहा मनवा कर गुरुदेव के प्रति फैले हुए द्वेष-पूर्ण तिरस्कार को गायक समाज में से तिरोहित करने का व्रत लिया और उस व्रत को भली भाँति पूरा किया। गुरुदेव का गौरव अब भी उनके रोम रोम में बसा हुआ है और वे कहा करते हैं, 'यदि आज भी गुरुदेव जीवित होते तो हम अवसर पाकर अवश्य उनसे सीखने बैठते, उनके पास विद्या का इतना अखंड भंडार था कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज़ीवन भर वे शिक्षा दे सकते थे।' एक बार तो संगीतकारों की भरी महफ़िल में उन्होंने गुरुदेव की महिमा का साक्षात् गान किया था। विक्रम संवत् की द्विसहस्राब्दी पूरी होने के उपलक्ष्य में बंबई में जो अखिल भारतीय संगीत कांग्रेस हुई थी, उसके अन्तिम दिन जब सभी सम्मिलित गायक वादक उपस्थित थे तब पंडितजी ने गुरुदेव की महिमा का एक पद तत्काल बनाकर ललित राग में गाया था। वह पद इस प्रकार है—

अस कोउ नज़र नहिं आवै।
गुनियन के गुरु विष्णु दिगम्बर, जब ते सुरग सिधाये ॥
सप्तसुर अरु तीन ग्राम में, श्रुति बाईस दिखाये।
रागभेद रसभेद अनंता, करके सुगम सिखाये ॥

पंडितजी के संगीत की विशेषताओं का विश्लेषण करते समय स्वाभाविक रूप से सबसे पहले उनके उनके कंठ-स्वर की ओर ही ध्यान जाता है। एक अंग्रेज़ लेखक ने लिखा है, "tone is the material of all music. It has as much variety as the human countenance." इसका तात्पर्य यही है कि जैसे मनुष्यों के चेहरे भिन्न-भिन्न होते हैं वैसे ही उनके कंठ-स्वर में भी वैविध्य है। आवाज़ के विशेष गुण के आधार पर ही हम भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की आवाज़ों को पृथक् करके पहचान सकते हैं। इस विशेष गुण का 'संगीत रत्नाकर' के प्रकीर्णक-अध्याय में काफ़ी विश्लेषण किया गया है। इसके विस्तार में जाने का तो यहाँ अवकाश नहीं है, किन्तु सामान्य रूप से आवाज़ के जिन गुणों को वहाँ श्लाघनीय माना गया है उन्हें हम संक्षेप में देख लें।

१. त्रिस्थान व्याप्ति—मंद्र, मध्य, तार इन तीनों स्थानों में बिना प्रयास घूमने की शक्ति।
२. अनुध्वनि—गूँज या अनुरणन।
३. माधुर्य—मिठास।
४. रक्ति—रंजकता।
५. गाम्भीर्य।
६. मार्दव—कोमलता।
७. घनता—दूर तक सुनाई देने का गुण जिसे अंतःसारता (आवाज़ के हल्केपन का उलटा) भी कहते हैं।
८. स्निग्धता—रूखेपन का अभाव यानी चिकनाहट।
९. कांति—सहृदयों को उज्ज्वल प्रतीत होने का गुण।
१०. प्राचुर्य—स्थूलता।
११. करुणा—श्रोताओं के चित्त में करुण रस उद्दीप्त करने की शक्ति।
१२. गाढ़ता—प्रबलता।
१३. श्लक्ष्णता—तैलधारा की तरह छिद्रहीनता यानी आवाज़ की continuity (न टूटना)।

पंडितजी की आवाज़ में इन सभी गुणों का दर्शन होता है। दूर-संश्राव्यता और त्रिस्थान-व्याप्ति तो उनकी आवाज़ में जन्मजात है। कुछ वर्ष पूर्व तक वे पंचम से गाया करते थे और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४ सप्तकों में उनका गला घूमता था। अब उम्र के तकाज़े से कुछ नीचा स्वर लेने पर भी आवाज़ की दूर-संश्राव्यता और त्रिस्थानव्याप्ति पूर्ववत् बनी हुई है। इस आयु में भी उनकी आवाज़ की ये शक्तियाँ श्रोताओं को आश्चर्य में डाल देती हैं। इनका श्रेय पंडितजी अपनी चिरकालीन मंद्र साधना को ही देते हैं। मंद्रसाधना द्वारा आवाज़ की सहज शक्तियों को विकसित करने का उन्होंने एक ऐसा आदर्श क़ायम किया है जो वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों का सदैव मार्ग-दर्शन करेगा। गम्भीरता के साथ स्निग्धता, घनता के साथ कोमलता, गाढ़ता के साथ रक्ति, प्रचुरता के साथ करुणा, श्लक्ष्णता के साथ त्रिस्थानव्याप्ति—ये सब गुण युग्मभाव से उनकी आवाज़ को अलंकृत किये हुए हैं। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि उनकी आवाज़ में गम्भी-रता तो है पर रुक्षता नहीं, घनता तो है पर कठोरता नहीं, गाढ़ता तो है पर नीरसता नहीं, प्रचुरता तो है पर पारुष्य नहीं और श्लक्ष्णता तो है पर स्थानसंकोच नहीं। युग्मभाव से गुणों का यह अद्भुत संयोग माधुर्य, अनुध्वनि और कांति से सुशोभित है। इन सबसे भी ऊपर है उनकी वह शक्ति जिससे वे अपनी आवाज़ का अर्थानुकूल और रसानुकूल प्रयोग करते हैं। इस शक्ति के बिना ऊपर लिखे सभी गुण मिल कर भी वांछनीय प्रभाव नहीं डाल सकते और श्रोताओं को निमज्जित करने वाला रसमय वातावरण खड़ा नहीं कर सकते। आवाज़ के समुचित प्रयोग की पंडितजी की यह शक्ति, साहित्य और साहित्य-शास्त्र के उनके अध्ययन से परिपुष्ट हुई है और इसलिये आज वे काकु-स्वर प्रयोग के सम्राट् हैं। श्रोताओं के अन्तस्तल को स्पर्श करने वाली उनकी आवाज़ का यही रहस्य है। कहाँ आवाज़ को कितना छोटा या बड़ा करना, कहाँ लंबाना और तोड़ना, कहाँ कम्पित करना और कहाँ स्थिर रखना, कहाँ गम्भीर बनाना और कहाँ कोमल करना—यह सब मानों उनके लिये सहजसिद्ध है। इसीलिये बादलों की गरज, बिजली की कड़क, शेर की दहाड़, वीर का उत्साह, भयानक की भीषणता, रौद्र का क्रोध जहाँ वे एक ओर दिखा सकते हैं, वहाँ दूसरी ओर स्नेह की कोमलता, भक्ति भाव का आत्मनिवेदन, वियोग की करुणा, शैशव और कैशोर की चपलता, यौवन की उमंग, प्रेम की निराशा, स्नेह का मान, मिलन का उल्लास, विस्मय की स्तब्धता, शान्त की उपरति, दास्य की दीनता, सख्य की स्निग्धता, वात्सल्य की पवित्रता और श्रृङ्गार की मधुरता को भी अपनी आवाज़ में मूर्ति-मन्त कर सकते हैं।

आवाज़ के इन सब विशेष गुणों और शक्तियों के कारण पंडितजी के कंठ में वह सम्मोहनी शक्ति है कि शास्त्रीय संगीत से बिल्कुल अनजान और रुचिहीन जनता भी उनके गान को मन्त्रमुग्ध होकर सुनती रहती है। पंडितजी के यूरोप के प्रथम प्रवास के समय यूरोप की जनता ने यह स्वीकार किया था कि इटली के प्रसिद्ध गायक करूज़ो की आवाज़ के सदृश उनकी आवाज़ है। यूरोपवाले मानते थे कि करूज़ो के बाद उनकी सी आवाज़ फिर से पैदा न होगी, किन्तु पंडितजी की आवाज़ की तुलना उन्होंने अपने उस उच्चतम आदर्श के साथ करके अपनी सराहना और श्रद्धा व्यक्त की थी। आवाज़ की इस अनुपम विशेषता के साथ साथ श्वास पर पूरा प्रभुत्व पंडितजी की विशेषता है। यौवन में तो वे दो-ढाई मिनट तक एक ही स्वर पर साँस रोक सकते थे। तार षड्ज पर स्थिर होते समय एक साँस में ही ख़्याल के अति विलंबित ठेके के तेरह-तेरह आवर्तन बीत जाते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंडितजी की अनुपम स्वर सिद्धि की झंकार अभी हमने सुनी। अब हम उनकी गायकी के अंगों का कुछ श्रवण-दर्शन कर लें। यहाँ उनकी मार्मिक राग-शुद्धि सबसे पहले हमारे सामने आती है। रागांग और क्रियांग का उन्होंने इतना सूक्ष्म विश्लेषण किया है कि प्रत्येक राग की स्वर-मूर्ति और भाव-मूर्ति का उन्हें मानों साक्षात् दर्शन मिल चुका है। इसीलिये उनका गान राग-शुद्धि की कसौटी पर बिल्कुल खरा उतरता है। बल्कि यों कहना चाहिए कि संगीतकारों में शिक्षा के अभाव से जो कुछ कमियाँ आ चुकी थीं उन्हें दूर करने के लिये पंडितजी ने गवेषणात्मक सूक्ष्म विचार द्वारा राग-शुद्धि की एक standard (प्रामाणिक) कसौटी का स्वयं निर्माण किया है। उनका गान आरम्भ होते ही कुछ ही क्षणों में राग का स्वरूप श्रोताओं को स्पष्ट हो जाता है। तद्वत् राग-विस्तार की भी उनमें विलक्षण क्षमता है। केवल एक राग की आलापचारी में ही दो-दो ढाई-ढाई घंटे विता देने के कई अवसर उनके जीवन में आये हैं। रागांग के परिवर्तन से, स्पर्श स्वरों के हेरफेर से, स्वरों के उच्चार-भेद से, स्थान-भेद और लय-भेद से किस प्रकार भिन्न-भिन्न रागों की रचना होती है और कैसे थोड़े से प्रमाद से राग की शुद्धि नष्ट हो सकती है, रागों के रूप किस सूक्ष्मता से परस्पर भिन्न रखे जा सकते हैं—ये सब बातें प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा पंडितजी जिस सरलता से अपने विद्यार्थियों को समझाते हैं, वह अतुलनीय है।

पंडितजी की गायकी की सर्वोच्च विशेषता उनकी आलापचारी में ही निहित है। तानों के कूट और क्लिष्ट प्रयोगों में भी वे दक्ष हैं, किन्तु उनका भावनाशील हृदय आलापचारी में ही खुलता है और वास्तव में उसी से अर्थ, भाव और रस की पूरी अभिव्यक्ति संभव है। तानों की विविधता में तो केवल अद्भुत रस के चमत्कार का ही दर्शन हो सकता है। उनसे बुद्धि की तृप्ति हो सकती है, हृदय की नहीं। इसीलिये पंडितजी परम्परानुसार तानों का प्रयोग करते हुए भी रागाभिव्यक्ति और रसबोध की दृष्टि से आलापचारी को ही अधिक महत्व देते हैं।

बोलतानों में गीत के शब्दों के साथ विभिन्न लय-प्रयोग और स्वर-संयोग से जिस त्रिवेणी संगम की सृष्टि होती है उसका पंडितजी विपुल प्रयोग करते हैं और यह भी उनकी गायकी की महत्वपूर्ण विशेषता है। तानों की अपेक्षा बोलतानों में अर्थाभिव्यक्ति और भावाभिव्यक्ति के लिये बहुत क्षेत्र रहता है और विभिन्न लयकारी के प्रयोग से बोलतानों द्वारा ख्याल गान में ध्रुवपद अंग की छाया भी आ जाती है। इन दोनों दृष्टियों से पंडितजी ने इस प्रयोग का यथेष्ट विकास किया है। बोलतानों में नित्य नवीन तिहाइयों की योजना से वे अपूर्व चमत्कार की सृष्टि करते हैं। लय का टेढ़ापन और क्लिष्ट लयकारियों का सरलता से अवसरानुकूल प्रयोग— ये भी इनकी गायकी के अभिन्न अंग बन गये हैं। गीत के मुखड़े पकड़ने का उनका नवनवायमान ढंग अनूठा है और हृदयग्राही है।

आलाप, बहलावा, बोलतान, तिहाई, तान, सरगम इत्यादि गायकी के अंगों का पंडितजी की शैली में पूरा समन्वय दिखाई देता है। कोई भी अंग अनुपात से कम या अधिक नहीं रहता। सबका यथापरिमाण और यथास्थान उपयोग उनकी गायकी को एक अपूर्व संतुलन प्रदान करता है। भरत ने संगीत के अलंकारों के लिये कहा है कि अलंकारों का प्रयोग यथास्थान ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होना चाहिये क्योंकि वैसा न होने पर अलंकारों का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। उन्होंने कहा है—

एभिरलङ्कर्तव्या गीतिर्वर्णाविरोधेन।
स्थाने चालङ्कारं कुर्यात् न ह्युरसि काञ्चिकां बध्येत्॥

जैसे कमर में पहनने का गहना गले में पहनने पर शोभा नहीं देगा वैसे ही संगीत में अलंकारों का यथास्थान प्रयोग न होने से गीत की सजावट के बजाय उल्टा प्रभाव हो सकता है। यह बात अलंकारों के लिये जितनी सत्य है उतनी ही गायकी के अन्य सभी अंगों के लिये भी सत्य है। पंडितजी ने इस 'यथास्थान' के मर्म को हृदयंगम कर लिया है और इसीलिये उनकी गायकी में किसी अंग की अस्थानीयता या अनुपात-विरोध को कहीं स्थान नहीं। वल्कि यों कहना चाहिये कि यह संतुलन तो उनके संगीत के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग वन चुका है, क्योंकि संगीत के एकमात्र उद्देश्य अर्थात् रसाभिव्यक्ति के वे ध्रुवध्येयी हैं और उसके सिद्ध आचार्य हैं।

साहित्य और साहित्य-शास्त्र के गहन अध्ययन से और भरत के अनुसार संगीत के साथ उनके समन्वय से पंडितजी के संगीत की रससिद्धि परिपुष्ट हुई है और उनकी यही विशेपता उनके संगीत के अनूठेपन की और मर्मस्पर्शिता की कुंजी है। स्वर-भेद से, उच्चार-भेद से, लय-भेद से, स्थान-भेद से और काकु-भेद से, एक ही शव्द किस प्रकार अनेक अर्थों का बोध करा सकता है इस सत्य के वे महान् द्रष्टा हैं। शव्द की अपनी शक्ति वहुत ही परिमित है, देश-काल से अवच्छिन्न है और इसीलिये शव्द पंगु हैं—इस तथ्य का वे अपने अननुकरणीय ढंग से प्रतिपादन किया करते हैं। शव्द तो एक बार में एक ही अर्थ दे सकता है, अन्य अर्थों का बोध कराने के लिये संगीत में ऊपर लिखे विभिन्न प्रयोगों का सहारा आवश्यक होता है। इसी प्रकार साहित्य-शास्त्र में भी शव्द और अर्थ की व्यंजना-शक्ति का प्रतिपादन करते समय आचार्यों ने प्रकरण अर्थात् प्रसंग, वोलनेवाले या सुनने वाले का वैशिष्ट्य, किसी तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति, काकु-भेद, देशकाल इत्यादि का पूरा महत्व स्वीकार किया है। इन कारणों के वैशिष्ट्य से शव्द के मुख्यार्थ से भिन्न अनेक अर्थों का बोध हो सकता है; इस तथ्य की प्रबल स्वीकृति साहित्य-शास्त्र में व्यंजना शक्ति के द्वारा की गई है; किन्तु संगीत में तो इस प्रकार के अर्थ बोध के लिये असीम क्षेत्र रहता है। शव्द के मुख्यार्थ से परे इस अनन्त क्षेत्र में जो संगीतकार जितनी दूर तक प्रवेश कर सकेगा उतनी ही मात्रा में वह संगीत के वास्तविक उद्देश्य को पूरा कर सकेगा। संगीत और संगीतकार की इस अनन्त शक्ति के संवंध में मैथ्यू आर्वल्ड की कविता 'Epilogue to Lessings Laocoon' की निम्नलिखित पंक्तियाँ स्मरणीय हैं—

"The words are gone as soon as they are uttered.
Beethoven takes them then—those two,
Poor bounded words and makes them new,
Infinite makes them, makes them young,
Transplants them to another tongue,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Where they can now without constraint,
Pour all the soul of their complaint,
And roll adown a channel large,
The wealth divine they have in charge,
Page after page of music turn,
And still they live and still they burn,
Eternal, passion-fraught and free,
Miscrere Domine."

अर्थात् शब्द तो उच्चारण के बाद तुरन्त लीन हो जाते हैं किन्तु बिथोवन इन दो परिचित और दीन शब्दों को लेता है, उन्हें नये बनाता है, अनन्त बनाता है, युवा बनाता है, एक भिन्न भाषा में उनकी पौध लगाता है। जहाँ वे बिना किसी अवरोध के अपनी आत्मा का पूरा उपालम्भ उँडेल सकते हैं, जहाँ वे एक बड़े स्रोत में बह सकते हैं और अपने में भरे हुए दिव्य वैभव को लुटा सकते हैं। उसके संगीत के पन्ने उलटते जाइये और प्रत्येक पन्ने में वे शब्द सजीव और जाज्वल्यमान दिखाई देंगे। वे नित्य हैं, अनन्त भावों को अपने में समाये हुए हैं और वे स्वतंत्र हैं।

बिथोवन के लिये मैथ्यू आर्नल्ड ने जो कहा है, पंडितजी के असंख्य श्रोता उसी सत्य की साक्षी देते आये हैं और देते रहेंगे। जिन्होंने उनके 'जोगी मत जा', 'मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो' या 'रे दिन कैसे कटि हैं' इत्यादि भजनों में से एक भी सुना है वे स्वानुभव से जानते हैं कि केवल एक शब्द का अथवा एक छोटे से वाक्यांश का सहारा लेकर पंडितजी किस प्रकार अनन्त भावनाओं की सृष्टि किया करते हैं। 'जोगी मत जा' में 'जोगी' को भक्त जिन भिन्न-भिन्न भावों से पुकारता है या 'मत जा' द्वारा जिन अनगिनत भावों से मनाता है उन सबको ससीम शब्दों द्वारा कहां तक कहें और कैसे कहें? 'रे दिन कैसे कटि हैं' में 'कैसे' तो न जाने क्या क्या कह डालता है? नित्य नवनवायमान अर्थों और भावों की निर्मिति इस कुशल स्वर-शिल्पी को सहज सम्प्राप्त है। 'मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो' में बाल गोपाल के क्षण क्षण बदलते हुए भावों को इस चतुर चितेरे की स्वरतूलिका जिन चल-स्वर-चित्रों में अंकित करती है वे प्रत्यक्ष श्रवणगम्य ही हैं। यों तो ख्याल-गान में भी गीत के शब्दों को लेकर पंडितजी तदनुकूल भिन्न-भिन्न भावनाओं का चित्रण किया ही करते हैं, किन्तु यहां उदाहरण के लिये उनके विशेष लोक प्रिय भजनों का उल्लेख मात्र करके हम मैथ्यू आर्नल्ड के साथ सम्मिलित होकर उन्हीं की कविता के शब्दों में अपनी भावनाओं को अन्तर्निहित करके मौन हो जाते हैं।

एक अन्य अंग्रेज लेखक ने कहा है—

"The very object of setting words to music is to draw out from a short concentrated phrase all the significant meanings which are latent in it." अर्थात् शब्दों को संगीतबद्ध करने का एकमात्र उद्देश्य यही है कि किसी छोटे से शब्द-समूह में समाये हुए और सुप्त-गुप्त भाव से रहे हुए अर्थों को जगाकर प्रकट किया जाय। कहना न होगा कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आधुनिक भारतीय संगीत में इस आदर्श को स्थापित करने वाले और अपनी शैली में उसका पूरा निर्वाह करने वाले मर्मज्ञ आचार्य और रसिक संगीतकार के रूप में पंडितजी अद्वितीय हैं। एक ओर भारतीय संगीत के अवनति के युग में आई हुई वहिर्मुखी जड़दृष्टि को रसभाव की ओर अन्तर्मुखी वना कर उसमें नवचेतना भरना, भरत आदि प्राचीन आचार्यों के सिद्धान्तों के आधार पर संगीत द्वारा रसबोध का एक शास्त्रीय आदर्श खड़ा करना और दूसरी ओर अपनी कला द्वारा उस आदर्श को पूर्ण रूप से प्रदर्शित करना—पंडितजी की यह दोहरी देन उन्हें जहाँ एक ओर भारतीय संगीत के रसशास्त्र के युग प्रवतक आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित करती है वहाँ दूसरी ओर लोक हृदय में एक अनुपम कलाकार के रूप में भी उन्हें सार्वभौम आसन पर अधिष्ठित करती है। पंडितजी के आचार्यत्व की तुलना हम भारतीय साहित्य शास्त्र के युग प्रवर्तक आनन्दवर्धनाचार्य से ही कर सकते हैं, क्योंकि जिस प्रकार आनन्दवर्धनाचार्य ने साहित्यशास्त्र में ध्वनि-सिद्धान्त की दृढ़ स्थापना द्वारा साहित्य के सभी अंगों को एक केन्द्रविन्दु प्रदान करके उनके संतुलन का एक आदर्श स्थापित किया, जो आज तक अबाध रूप से स्वीकृत रहा है, उसी प्रकार पंडितजी ने संगीत के लिये एक ऐसे शास्त्रीय और वैज्ञानिक आदर्श की प्रतिष्ठा की है जो सदियों तक भारतीय संगीत के साधकों और रसिकों का मार्गदर्शन करता रहेगा। आनन्दवर्धनाचार्य ने ध्वनि सिद्धान्त की पुष्टि के लिये कई जगह संगीत द्वारा रसबोध होने का उदाहरण प्रस्तुत किया है। साहित्य के उस प्रकाण्ड आचार्य को संगीत की शक्ति का जिस प्रकार ज्ञान था उसी प्रकार हमारें संगीताचार्य को भी साहित्य और संगीत के समन्वित बल का पूरा दर्शन हुआ है और संगीत की अनन्त शक्तियों प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है। पंडितजी के इस आचार्यत्व के उपरान्त उनके रसदर्शन के आदर्श को मूर्तिमन्त करने वाली उनकी अपनी ही जो कला है वह उनके आचार्यपद को अद्वितीय वैशिष्ट्य प्रदान करती है।

पंडितजी के विशाल रसदर्शन की एक विशेष दिशा यहाँ उल्लेखनीय है। साहित्यशास्त्र में श्रृंगार रस के आलम्बन विभाव का नायक-नायिका के रूप में जो मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है उसे संगीत की राग-रागिनी के क्षेत्र में घटित करने का पंडितजी ने सर्वप्रथम प्रयास किया है। रागों में प्रयुक्त स्वरान्तरों के वैशिष्ट्य से तथा उच्चार-भेद, लय इत्यादि के प्रभाव से उनमें पुरुषत्व और स्त्रीत्व का प्रदर्शन तो पंडितजी के इस प्रयास की रूपरेखा मात्र है, जिसे उन्होंने नायक तथा नायिकाओं के आयु भेद, स्वभाव-भेद और मिलन-विरहजनित अवस्था-भेद के रंगों से सूक्ष्मतापूर्वक भरा है। स्वरों से किस प्रकार रागों में शैशव या वाल्यकाल की चपलता, यौवन की उमंग, प्रौढ़ावस्था की गम्भीरता इत्यादि की अभिव्यक्ति होती है और विरह, मान, स्नेह-कलह, मिलन, उत्कंठा इत्यादि परिस्थितियों और भावावस्थाओं की मूर्ति खड़ी होती है, इन सब बातों का शास्त्रीय विवेचन तथा प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा प्रदर्शन पंडितजी के राग-दर्शन की गहनता का प्रतीक है। वड़ौदा विश्वविद्यालय में सन् १९५० में पंडितजी ने 'राग अने रस' शीर्षक के अन्तर्गत जो दो व्याख्यान दिये थे उनमें इस राग-दर्शन और रस-दर्शन का संक्षिप्त विवरण प्रकाशित हुआ है।

पंडितजीके इस आचार्यत्वके अतिरिक्त उनके जिस कलाकार रूपसे सर्वसामान्य जनता सुपरिचित है, उसका भी हम अल्पदर्शन कर लें। मंचपर उनके आते ही एक भव्य और उदात्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वातावरण छा जाता है और गानके आरम्भसे पूर्व ही श्रोताओंमें गम्भीरतापूर्ण उत्सुकता भर जाती है। पंडितजीकी गम्भीर, सारपूर्ण, मधुर और रक्तिपूर्ण आवाज़ प्रथम 'सा' के उच्चारमें ही श्रोताओंका ध्यान आकृष्ट कर लेती है। उसके बाद तो श्रोता पूर्णतः दत्तचित्त हुए बिना रह ही नहीं सकते। जिस प्रकार नाटकमें कर्ण और चक्षु दोनों इन्द्रियोंके विषय श्रव्य और दृश्यका समावेश रहनेके कारण दर्शकोंका मनोयोग अनायास हो जाता है, उसी प्रकार पंडितजी संगीतके अर्थात् श्रव्य विषयके कलाकार होते हुए भी अर्थभावानुकूल अपने अभिनय द्वारा श्रोताओंकी कर्णेन्द्रियके साथ-साथ नेत्रोंके लिए भी अर्थ, भाव और रसके अनुकूल सामग्री उपस्थित करते हैं। इसीलिये उनके संगीत को दोहरा बल मिलता है। स्वरोंके उतार-चढ़ाव, वक्र-प्रयोग, संकोच-विस्तार, ग्रह और मोक्ष इत्यादि सभी क्रियाओंको पंडितजीके हस्त और मुखकी मुद्राएं स्थूल आकर प्रदान करती हैं। गीतके शब्दोंके साथ तथा उन शब्दोंके अर्थ-भावके साथ स्वरोंका समन्वय एवं उन स्वरोंके साथ अभिनयका समन्वय—यह साहित्य, संगीत और अभिनय का त्रिवेणीसंगम एक अलौकिक आनन्द की सृष्टि करता है। अर्थानुकूल अश्रुपुलकादि सात्त्विकभावों तथा अन्य अनुभावों को भी पंडितजीके स्वराभिनयमें पूरा स्थान रहता है। इसीलिये वे श्रोताओं को अनायास ही भाव तथा रसकी उच्च भूमिका में ले जाते हैं।

गान आरम्भ करते ही पंडितजी पूर्णतया आत्मस्थ हो जाते हैं। गीताके स्थितप्रज्ञकी भाँति सभी इन्द्रियोंका उनके विषयों से निवारण करके उन्हे अन्तर्मुखी बनाकर ही पंडितजी अपनी कला की आराधना करते हैं। उसे 'प्रदर्शन' कहनेको जी नहीं चाहता क्योंकि 'प्रदर्शन' में बहिर्मुखताका भाव निहित है। कछुएकी भाँति सब इन्द्रियोंकी वृत्तियोंको एकाग्र करके चारों ओर के वातावरणसे अपनेको अलिप्त बनाकर गाना उनका सहज स्वभाव हो गया है और इसीलिये वे 'स्वान्तःसुखाय' का आदर्श निभानेमें समर्थ हैं। सच्चे कलाकार का यह 'स्व' रसमयी भूमिका पर ही रहता है और इसीलिये उस 'स्व' का क्षेत्र इतना विशाल है कि उसमें सभी सहृदयोंके लिये स्थान रहता है। पंडितजीका गान सुननेके लिये जनता कड़ाके की सर्दी या मूसलाधार वर्षा, भारी भीड़ इत्यादि दैहिक कष्टोंको सहर्ष झेलकर जिस अपार कला-प्रेम का परिचय देती है, उसका रहस्य इस 'स्वान्तःसुखाय' में ही मिल सकता है।

परम्परासे बनी हुई लीक या ढरेंको समयानुकूल और अवसरानुकूल बदलनेकी पंडितजीमें अद्भुत क्षमता है। श्रोतृसमुदायकी संस्कार-भूमिका को ध्यानमें रखते हुए तथा अवसर की गंभीरता या तरलता को लक्ष्यमें लेकर वे तदनुकूल संगीतका प्रदर्शन करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि वे शास्त्रीय संगीतकी मर्यादाओंका कभी भी उल्लंघन करते हों, बल्कि उन मर्यादाओंके भीतर ही उनकी विशाल और गहन दृष्टिने इतना विस्तृत क्षेत्र ढूँढ लिया है कि किसी भी देशके या किसी भी संस्कार-भूमिकाके जनसमुदाय उनके लिए अजेय नहीं रहे। विदेशोंमें उनकी अनुपम सफलताका यही रहस्य है। हमारी भाषासे पूर्णतः अनभिज्ञ तथा हमारे संगीतकी 'टैकनीक' से सर्वथा अपरिचित जनता तक किस प्रकार अपने मनोभावोंको पहुँचाना और उनका रंजन करना, यह कला पंडितजीको मंत्रविद्याकी भाँति सिद्ध हैं। इसीलिए वे संगीतको विश्व-भाषाके रूपमें प्रतिपादित कर सके हैं और प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा उसका प्रदर्शन कर सके हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि 'स्वान्तःसुखाय' की आत्मस्थता और उपस्थित जनसमूहके अनुकूल या अवसरानुकूल प्रदर्शन—ये दोनों तो परस्पर विरोधी बातें हैं। इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि यह विरोध वास्तविक नहीं, केवल विरोधाभास है और ऐसा विरोधाभास तो संसारकी प्रत्येक महान् वस्तुमें सदा रहता ही है। अतः यह विरोधाभास स्वयमेव पंडितजीकी कलाकी महत्ताका प्रतीक है।

अभी हाल ही में जनवरी १९५७ में संयुक्त-राज्य अमरीका के वेस्टमिंस्टर कॉयर कालेज, प्रिंस्टन, न्यूजर्सी के Choir-group (गायक संघ) का काशी हिन्दू विश्व विद्यालयमें आगमन हुआ था। उस अवसर पर पंडित जी ने 'रे दिन कैसे कटि हैं' इस भजन का जो गान किया, उसे सुन कर उस संघ के नेता डॉ० जॉन फ़िनले विलियम्सन आनन्द विभोर होकर अश्रुपुलकसह वाणी में कह उठे थे, "पण्डितजी के संगीत ने सीधे हमारे हृदय को स्पर्श किया है और इसलिए हमारा विश्वास है कि उनका संगीत औरों की भाँति मस्तिष्क से न निकल कर हृदय से निकलता है। उनके इस दिव्य संगीत का हमें जो अलौकिक अनुभव मिला है, उसे हम जीवन भर नहीं भूल सकेंगे।" ऐसे तो कितने ही सराहनापूर्ण उद्गार पंडितजी के विश्वजनस्पर्शी संगीत पर न्योछावर हो गये होंगे।

पंडितजी के कलाकार व्यक्तित्व का स्वल्प दर्शन तब तक अधूरा ही रहेगा जब तक उनकी कला के एक मौलिक पहलू को हम ध्यान में नहीं लेंगे। वह पहलू है उनके कला प्रदर्शन में प्रयास का पूरा अभाव। गायकी के क्लिष्ट से क्लिष्ट अंग, लयकारी के विकट भेद इत्यादि भी उनके गान की सहज प्रवाहिता और प्रयासहीनता का अपहरण नहीं कर सकते। जहाँ प्रयास की भावना आई कि कला की हृदयस्पर्शिता में तत्काल बाधा पड़ जाती है। पंडितजी की गायकी समतल भूमिपर बहने वाली सरिता की भाँति सरल और सहज है। जहाँ एक ओर यह सत्य है कि पंडितजी के संगीत की रसवाहिता उसकी सरलता और सहज भाव पर आधारित है वहाँ यह भी उतना ही सत्य है कि यह सरलता और सहज भाव उन्हें रस-दृष्टि के कारण ही प्राप्त हुए हैं। समस्त कलाओं के केन्द्र-बिन्दु रसोद्बोध की जिसे सिद्धि मिली हो, उसे भला कहीं गायकी के छोटे मोटे अंगों के प्रयोग में प्रयास की आवश्यकता हो सकती है? यहाँ लीलाशुक का एक श्लोक स्मरण हो आता है जो इस प्रकार है—

भक्तिस्त्वयि स्थिरतरा भगवन्! यदि स्याद्-
दैवेन नः फलति दिव्यकिशोरमूर्तिः।
मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलिः सेवतेऽस्मान्
धर्मार्थकामगतयः समयप्रतीक्षाः॥

अर्थात् हे भगवन्! तुममें यदि हमारी दृढ़ भक्ति हो जाय तो दैवकृपा से तुम्हारी दिव्य किशोर मूर्ति के भी हमें दर्शन हो जायँगे। फिर तो मुक्ति (सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य और सार्ष्टि मुक्ति) हाथ बाँधे हमारी सेवा करेगी और धर्मार्थ काम और मोक्ष (सायुज्य मुक्ति) हमारी आज्ञा की प्रतीक्षा में सब समय उद्यत रहेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिस प्रकार भक्ति के लिये यह उक्ति यथार्थ है, उसी प्रकार पंडितजी की गान शैली के लिये भी यह कहने को जी हो आता है कि जिसे रससिद्धि मिल गई है, उसके सामने रंगदेवता हाथ बाँधे रहते हैं, आलाप, बोलतान, तांन, लयकारी इत्यादि गायकी के अंग तो उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा में सेवा-तत्पर रहते हैं। इनमें से जिसे भी जब भी वे चाहें बुला सकते हैं और अपने इंगित के अनुसार उनसे काम ले सकते हैं। किसे कब बुलाना और कब वापस भेज देना यह भी इस रससिद्ध कलाकार को सध गया है। इसलिये गायकी के अंगों का पृथक्-पृथक् दर्शन न करके हम उनकी रससिद्धि को ही स्मरण करते हैं और उसे ही अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं।

'मूलेते सिंचिले जल शाखा पल्लवेर वल।'

(वृक्ष के मूल में जल सींचने से शाखा-पल्लवों को स्वयं ही बल मिल जाता है।)

१७. संगीत रूपकों की रचना

स्वर और अभिनय का जो अद्भुत समन्वय हमने पंडितजी के कलाकार व्यक्तित्व में देखा, उनकी प्रतिभा ने उस दिशा में भी नवीन चमत्कारपूर्ण प्रयोग किये हैं। शब्द और स्वर का ऐसा अनूठा संयोग जो अर्थानुकूल अभिनय के लिये स्वयं ही सहज प्रेरणा बन जाय, यह सर्वथा नई दिशा है। भारतीय संगीत तथा नाट्य के क्षेत्र में आधुनिक युग में यह अपूर्व प्रयोग करके पंडितजी ने मानो एक ऐसे प्रदेश के द्वार खोल दिये हैं जिसमें निहित शक्तियाँ अब तक कुछ सुप्त-गुप्त सी पड़ी थीं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में श्री कला संगीत भारती के अध्यक्ष के रूप में आने के बाद उन्होंने सन् १९५० में स्व० श्री जयशंकर प्रसादजी के महाकाव्य 'कामायनी' में से चुने हुए अंशों को स्वर-देह देकर एक विलक्षण संगीतरूपक की रचना की थी। श्री कला संगीत भारती की छात्राओं द्वारा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में इस संगीत रूपक का साभिनय प्रदर्शन हुआ था। संगीत रूपक या opera का यह प्रयोग भारतीय संगीत और नाट्य के लिये इस युग में सर्वथा नूतन था। पंडितजी के विशाल रस-दर्शन, अनुपम राग-दर्शन और गहन रसदर्शन इन सबको इस अछूते क्षेत्र में अपना पूरा आलोक फैलाने का अवसर मिला और साहित्य, संगीत तथा नाट्य की त्रिवेणी ने सहृदयों को अपूर्व रूप से रसप्लावित किया। साहित्यक मर्मज्ञ यहाँ तक कह उठे, "कामायनी के मर्म को तो हम आज ही समझे। केवल शब्दों द्वारा जो कुछ स्फुट नहीं हो पाता था, उसे पंडितजी के स्वरों ने और स्वरों से प्रेरित अभिनय ने दिवालोक के समान स्पष्ट कर दिया और शब्दातीत कितने ही नये नये भावों की सृष्टि की।"

इस परम सफल प्रयोग के पश्चात् स्वरों के इन्द्रजाल के इस महान् धनी ने एक और भी अद्भुत प्रयोग करने की ठानी। अब की बार उन्होंने स्वर और अभिनय के संयोग के लिये पद्य का सहारा भी छोड़ दिया और सीधे गद्य को लेकर यह स्वरशिल्पी निःसंकोच संगीत-रूपक की रचना में जुट गया। पद्य में सहज प्रवाह और गति के कारण जो संगीतात्मकता होती है उसकी भी उन्होंने अपेक्षा न रखी और स्व० श्री जयशंकर प्रसादजी के गद्य नाटक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'कामना' के चुने हुए अंशों को सीधे उसी रूप में लेकर उन्होंने सन् १९५२-५३ में एक परम अद्भुत प्रयोग किया जो केवल भारत के लिये ही नहीं सम्भवतः जगत् भर के लिये नवीन था। फ़रवरी १९५३ में इस संगीत रूपक का श्री कला-संगीत भारती की छात्राओं द्वारा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में साभिनय प्रदर्शन हुआ। सीधे गद्य को स्वर-देह देकर पंडितजी ने जो चमत्कार खड़ा किया था, उसकी पूर्ण सफलता तथा अद्भुत रसवाहिता सहृदयों के भूरि-भूरि प्रशंसापूर्ण उद्गारों में निखर उठी। अर्थानुकूल स्वर-योजना इस प्रयोग में चरम सीमा तक पहुँच गई और पंडितजी के चिरकालीन स्वर-दर्शन को यहाँ नित्य नूतन दिशाओं में अपनी आभा फैलाने का अवकाश मिला।

इन दोनों संगीत रूपकों में से कोई उदाहरण देकर इन अभूतपूर्व प्रयोगों की सफलता निदर्शित करना यहाँ स्थानाभाव से संभव नहीं है। इसलिये स्वर के इस ऐंद्रजालिक के प्रतिभा-स्रोत की इस दिशा का सूचन मात्र करके हम आगे बढ़ते हैं।

१८. वाग्गेयकार के रूप में

साहित्य को स्वर-देह देने की पंडितजी की महती क्षमता का हमने अभी थोड़ा-सा परिचय पाया। अब स्वर-देह के साथ-साथ शब्द-देह-रचना की उनकी शक्ति का भी थोड़ा सा अवलोकन कर लें। यह दोहरी क्षमता जिसमें हो उसे शास्त्रकारों ने वाग्गेयकार कहा है। यथा—

वाचं गेयं च कुरुते यः स वाग्गेयकारकः।

अर्थात् जो वाक् और गेय दोनोंकी रचना कर सके वह वाग्गेयकार हुआ। उसे संगीतकारोंमें सर्वश्रेष्ठ माना गया है। यूरोप में 'कम्पोजर' का जो स्थान है अपने यहाँ वही स्थान वाग्गेयकार का है। कम्पोजरके लिये तो आवश्यक नहीं कि संगीतके साथ-साथ साहित्यकी रचना भी वह स्वयं करे, किन्तु वाग्गेयकार के लिये तो वह कसौटी भी रखी गई है। 'संगीत रत्नाकर' में वाग्गेयकार के जो गुण बताये गये हैं वे साहित्य और संगीत दोनों के साथ एक-सा सीधा सम्बन्ध रखते हैं। यथा—

१. शब्दानुशासन का अर्थात् व्याकरण-शास्त्र का ज्ञान।
२. अभिधान प्रवीणता अर्थात् शब्दकोष का विपुल संग्रह और प्रयोग-कुशलता।
३. छन्द के भेद-प्रभेदों का बोध।
४. अलंकारों में कौशल।
५. रस-भाव का ज्ञान।
६. भिन्न-भिन्न देशों की विशेषताओं का ज्ञान।
७. अनेकों भाषाओं का ज्ञान।
८. कला शास्त्रों में प्रवीणता।
९. नृत्त, गीत और वाद्य में चातुरी।
१०. मनोहर कंठ जो सहज ही राग और रस की अभिव्यक्ति में समर्थ हो।
११. लय, ताल और कला (मात्रा-भेद) का ज्ञान।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१२. काकुओं का 'विवेक' अर्थात् उनके यथास्थान प्रयोग की क्षमता।
१३. प्रभूत प्रतिभा।
१४. सुभग-गेयता।
१५. देशी* रागों का ज्ञान।
१६. सभा में वाक्पटुता।
१७. राग-द्वेष का परित्याग।
१८. चित्त की सार्द्रता या सरसता।
१९. रसनिर्वाह में औचित्य का ज्ञान।
२०. अनुच्छिष्ट उक्ति करनेका नियम अर्थात् अन्य कवियों की उक्तियों का उच्छिष्ट न लेकर स्वयं नवीन ढंग अपनानेका स्वभाव।
२१. दूसरे के चित्त का ज्ञान।
२२. प्रबन्धों† के विविध प्रकारों का प्रगल्भ-ज्ञान।
२३. द्रुतगीत निर्माण।
२४. तीनों स्थानों में गमकों के प्रयोग की प्रौढ़ता।
२५. विविध आलप्तियों (अलाप) में निपुणता।
२६. अवधान अर्थात् दत्तचित्तता।

गुणोंकी इस तालिका के साथ पंडितजी की विशेषताओं का समन्वय दिखाना यहाँ स्थानाभाव के कारण असम्भव है, किन्तु अब तक पंडितजी के विषय में हम जो कुछ भी जान चुके हैं उससे यह भली-भाँति स्पष्ट होगा कि उपरिलिखित सभी गुणों ने उन्हें अलंकृत करके वाग्गेयकार की श्रेणी में उच्च स्थान दिलाया है। उनकी बनाई हुई बन्दिशें जिन्होंने सुनी होंगी वे उनकी साहित्य और संगीत की दोहरी प्रतिभा का अनुभव पाये बिना नहीं रहे होंगे। 'प्रणवरंग' या 'प्रणव' के नाम से अथवा कभी-कभी बिना नाम के भी उन्होंने जो बंदिशें बनाई हैं उनमें उनकी सहज कवित्व-शक्ति, छन्द-ताल का अनूठा समन्वय, रस-भाव की सम्यक व्यंजना, औचित्य का पूरा निर्वाह, सूक्ष्म संवेदनशीलता, शास्त्रज्ञानकी विविधता तथा प्रौढ़ता की झाँकी अवश्य मिलती है।

१९. अनुसन्धानकर्ता के रूप में

'अनुसन्धान' का यदि व्यापक अर्थ लिया जाय तो पंडितजी ने संगीत में साहित्य के तत्त्वों का जो पुट देने का शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक यत्न किया है और साहित्य में संगीत के संयोग द्वारा जो नये प्राण फूँके हैं वह सब एक उच्चकोटि का अनुसन्धान ही है। इस क्षेत्र में जिन नवीन

* 'देशी' से यहाँ उन राग प्रकारों को समझना चाहिये जिनमें नियमोंकी पूरी कड़ाई नहीं होती और इसी कारण जो लोक-संगीत के निकट होते हैं।

† संगीत में छन्द और ताल के समन्वित रूपके आधार पर जो भिन्न प्रकार की गीत रचनाएँ होती है, उन्हें प्राचीन भाषा में प्रबन्ध कहा जाता है। प्रबन्ध के अनेक भेद-प्रभेदों का भरत के काल से ही शास्त्रों में प्रतिपादन होता आया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिशाओं में उन्होंने प्रयोग किये हैं, वे सब मिलकर उनके अनुसन्धान को विशाल और विस्तृत बनाते हैं। फिर भी उनके अनुसन्धान की जिन कुछेक दिशाओं को अभी तक हम नहीं छू पाये हैं उनका यहाँ सूचन आवश्यक है।

पंडितजी लाहौर में जब कठोर अभ्यास में संलग्न थे तभी से उनकी दृष्टि भिन्न-भिन्न स्वरान्तरों के मनोवैज्ञानिक प्रभाव का सूक्ष्म निरीक्षण करने लगी थी। उदाहरण के लिये कोमल गान्धार-निषादयुक्त स्वरावली का मृदु प्रभाव जाँचने के लिये एक बार उन्होंने लाहौर के चिड़ियाघर में एक विशेष हिंस्र शेर पर प्रयोग किया था। वह शेर नया ही चिड़ियाघर में लाया गया था और उसकी भीषण हिंस्रता कुख्यात थी। उसके पिंजरे के समीप जब कोई भी व्यक्ति पहुँचता तो वह इतने वेग के साथ पिंजरे के सींखचों पर झपटता और ऐसी भयंकर दहाड़ मारता कि कई व्यक्ति बेहोश तक हो जाते थे। इसलिये उसके पास दर्शकों का जाना भी निषिद्ध कर दिया गया था। ऐसे भीषण प्राणी पर उस मृदु स्वरावली का कुछ प्रभाव हो सकता है या नहीं यह जाँचने की दृष्टि से पंडितजी अपने एक गुरुबन्धु वायलिनवादक श्रीकृष्ण आठले को साथ लेकर उस पिंजरे के सामने गये। इन्हें देखते ही वह शेर उसी प्रकार झपटा और दहाड़ा, किन्तु इन लोगों ने अविचलित रहकर वायलिन पर काफ़ी के स्वरों का वादन शुरू किया। धीरे-धीरे शेर की हिंस्रता और भीषणता कम होने लगी और प्रायः ५ मिनट बाद तो उसकी आँखों में प्यार उमड़ आया और वह निरीह तथा शान्त बन कर सींखचों के पास आकर अपने पंजों से इन दोनों को स्नेहपूर्वक सहलाने का और वायलिन से मानों खेलने का यत्न करने लगा। इस प्रकार पंडितजी को इस प्रयोग में पूरी सफलता मिली। वायलिन पर बनाये हुए स्वरों में मनुष्य के कंठ से अधिक मृदुता आ सकती है, यह उनकी धारणा थी और इसीलिये वायलिन द्वारा ही यह प्रयोग किया गया था। यदि ऐसे प्रयोगों के लिये उन्हें वैज्ञानिक साधन सुलभ हो तो इस क्षेत्र में भी वे अपनी निगूढ़ दृष्टि द्वारा प्रचुर सफलता पा सकते हैं।

इसी प्रकार एक बार उन्होंने स्व० सर जगदीशचन्द्र बोस की प्रयोगशाला में एक पौधे के पास भैरवी के स्वरों का गान किया था। गान के पूर्व पौधे की जो दशा थी उसमें गान के बाद काफ़ी परिवर्तन दिखाई दिया। पहले वह न अधिक मुरझाया हुआ था और न प्रफुल्ल दिखाई देता था; किन्तु गान के प्रभाव से उसमें नया उल्लास-सा भरा हुआ निरी आँखों को भी दिखाई दिया। और वैज्ञानिक यन्त्रों ने तो उस परिवर्तन की गवाही दी थी।

चिकित्सा के क्षेत्र में भी पंडितजी ने बहुत से प्रयोग किये हैं। दो तानपूरों में गान्धार तथा निषाद मिला कर कोमल धैवत की पूरिया की मन्द्र-मध्य (मध्य मध्यम से आगे न बढ़ते हुए) की विलम्बित आलापचारी द्वारा अनिद्रा से पीड़ित कई व्यक्तियों को उन्होंने निद्रामग्न कराया है। मोर्फ़िया के इंजेक्शन से भी जो इलाहाबाद निवासी मेजर जनरल रणजीत सिंह नहीं सो पाते थे, उन पर इस स्वर-प्रयोग का अद्भुत प्रभाव हुआ। उसी प्रकार 'लो ब्लड प्रेशर' से पीड़ित एक मित्र पर, जिनका नाम सेठ जमनोदास दामोदर है, पंडितजी ने देवगिरि, गौड़सारंग आदि उत्तेजनाप्रद रागों का सफल स्वर प्रयोग किया था जिससे कुछ ही दिनों में वे मित्र आश्चर्यजनक रूप से अच्छे हो गये थे। टायफ़ॉयड के तेज़ ज्वर को कोमल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर-प्रयोगों द्वारा उतारने का भी वे कानपुर-निवासी श्री रामगोपालजी पर सफल प्रयोग कर चुके हैं। ऐसे ही अन्य कई प्रयोग भी हैं जिनका ब्योरा देना यहाँ संभव नहीं। किन्तु किस स्वरान्तर का शरीर की किस धातु पर और किस अवयव पर कैसा असर होता है इसका वैज्ञानिक अध्ययन करने की उन्हें अब तक सुविधा नहीं मिल पाई है। ये सब प्रयोग तो उन्होंने केवल अपनी आन्तरिक दृष्टि से ही किये हैं। इस क्षेत्र में यदि वैज्ञानिक अनुसंधान के साधन और सुविधाएँ प्राप्त हों तो कई परम उपयोगी तथ्यों का वे आविष्कार कर सकेंगे।

अनुसन्धान की इन सब दिशाओं के अतिरिक्त एक अन्य दिशा में भी पंडितजी ने उल्लेखनीय कार्य किया है। भरत तथा याज्ञवल्क्य के संबंध में ऐतिहासिक खोज करके उन्होंने कई वर्ष पूर्व जो दो विद्वत्ता पूर्ण लेख तैयार किये थे, वे उनकी सूक्ष्म ऐतिहासिक दृष्टि के परिचायक हैं।

२०. शास्त्रकार के रूप में

पंडितजी की बहुमुखी प्रतिभा का अब तक हमने जो अवलोकन किया है उसका परिपाक जहाँ हुआ है, हिमालय के उस उच्च शिखर का दर्शन सर्वाधिक भव्य, उदात्त और उन्नत है। जीवन की सभी पगडंडियाँ चारों ओर से आकर जिस केन्द्र बिन्दु पर मिली हों, उसकी महत्ता का क्या कहना? वह केन्द्र बिन्दु है पंडितजी का शास्त्रकार रूप। जीवन भर की कला-साधना का और चिरकालव्यापी अध्ययन, मनन, चिन्तन और शास्त्र-मंथन का निर्यास जिसमें समाया हो उस अमृत भाजन का श्रवण-दर्शन मंगलमय क्यों न हो?

यह तो हम देख ही चुके हैं कि पंडितजी प्रायः ४० वर्ष से संगीत शास्त्रों के अध्ययन, चिन्तन में संलग्न रहे हैं। इस साधना के कुछ ही वर्षों में उन्हें यथेष्ट मात्रा में सत्य की उपलब्धि हो गई थी, किन्तु दैवानुकूल समय न आने तक वह उपलब्धि अक्षर-देह में प्रकाशित न हो सकी। स्वयं हाथ से लिखने में अरुचि या ऊब जाने का भाव शास्त्रलेखन में दीर्घकाल तक बाधा बना रहा। किन्तु भगवत्-कृपा से सन् १९५४ में वाराणसी में यह बाधा दूर हुई, जबकि पंडितजी के संचालित श्री कला संगीत भारती में उन्हीं से शिक्षा पाई हुई और उनकी शास्त्रीय विचारधारा को उनसे साक्षात् रूप से अवगत हुई उनकी शिष्या, प्रस्तुत लेख की लेखिका को इस अनमोल लेखन-सेवा का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ और तब पंडितजी की जीवन-साधना का परिपाक प्रकाशित हो सका। कई बार उनके गुण प्रेमियों को और श्रद्धालुजनों को ऐसा लगा करता है कि उनके सुदृढ़ सिद्धान्त पक्ष का बहुत पहले ही प्रकाशन हो जाना वांछनीय था। किन्तु विचारों की पूर्ण परिपक्वता, दीर्घकालीन अनुभव की प्रौढ़ता और सतत मंथन से पाये हुए सिद्धान्तों की दृढ़ता संभवतः विधाता को अधिक वांछित थी, इसीलिये इतने दीर्घकाल तक पंडितजी का शास्त्रकार रूप प्रच्छन्न रहा। अब उनका यह रूप दो प्रकार से प्रकट हुआ है। एक तो संगीत के प्रायोगिक पक्ष के पथ प्रदर्शक के रूप में तथा दूसरे संगीत के उलझे हुए शास्त्रपक्ष को सुलझाने वाले शास्त्रज्ञ के रूप में। संगीताञ्जलि की ग्रन्थमाला उनके प्रथम रूप की अभिव्यक्ति है और 'प्रणव-भारती' उनके द्वितीय रूप की। इन दोनों रूपों की विशेषताओं का दर्शन हम परिशिष्ट में करेंगे। भरतादि प्राचीन ग्रन्थकारों के दुरूह सिद्धान्तों का स्पष्टी-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पदवी ? नहीं ।
है खिला राष्ट्र का स्नेह-पद्म, स्वर-रसश्री का यह विमल सद्म ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करण तथा आधुनिक लक्ष्य के साथ उनका संबंध-स्थापन, वस्तुतः यही कार्यभार देकर विधाता ने उन्हें मानों इस जगत् में भेजा था और वह कार्य जीवन की इस प्रौढ़ वेला में पूरा हुआ है, हो रहा है और होता रहेगा यह देख कर सत्य के अनुरागी परम आनंदित हैं। सुदीर्घ काल तक सरस्वती के इस वरद पुत्र द्वारा यह कार्य सम्पन्न होता रहे, हम सभी मिलकर इस हीरक-जयन्ती महोत्सव पर ऐसी कामना व्यक्त करते हैं।

२१. उपाधियाँ और विविध सम्मान

पंडितजी के सहज गौरवमय व्यक्तित्व को जिन अनेकों उपाधियों ने विभूषित किया और स्वयं उनका आश्रय पाकर जो धन्य हुईं, विस्तारभय से उनमें से केवल कुछ का ही यहां उल्लेख किया जा सकता है। जनता की ओर से, विभिन्न संस्थाओं की ओर से तथा विशिष्ट व्यक्तियों की ओर से उनके सम्मान में जो विविध आयोजन हुए हैं उन सबका अंशमात्र भी यहां स्मरण करना संभव नहीं है; केवल दिग्दर्शन मात्र से ही हमें सन्तोष कर लेना होगा।

उपाधियाँ

१. पद्मश्री—१९५५ के गणतंत्र दिवस पर भारत के राष्ट्रपति ने उन्हें 'पद्मश्री' की उपाधि द्वारा विभूषित किया। समग्र भारत की जनता ने इसे भारतीय संगीत का ही राजकीय गौरव माना और हर्षपूर्ण गर्व का अनुभव किया।

२. संगीत प्रभाकर—महामना पं० मदन मोहन मालवीयजी द्वारा प्रदत्त।

३. संगीत महामहोदय—नेपाल के महाराजा द्वारा सन् १९३० में प्रदत्त।

४. संगीत मार्तण्ड—राजकीय संस्कृत महाविद्यालय कलकत्ता द्वारा सन् १९४० में प्रदत्त।

५. संगीत सम्राट्—विशुद्ध संस्कृत महाविद्यालय काशी की ओर से सन् १९४३ में प्रदत्त।

विशेष सम्मान

१. सन् १९३४ में कराची म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन द्वारा सिविक ऐड्रैस (नागरिक अभिनन्दन) समर्पण, जब जमशेद एन० आर० मेहता वहाँ मेयर थे। किसी संगीतकार के ऐसे नागरिक सम्मान का भारत में यह पहला अवसर था।

२. सन् १९४८ में भारत के समस्त संगीत प्रेमियों द्वारा उनका स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव बम्बई विश्वविद्यालय के पदवी-दान-मंदिर में डॉ० एम० आर० जयकर महोदय की अध्यक्षता में बड़ी धूमधाम से मनाया गया था। इस अवसर पर उन्हें एक बहुमूल्य चाँदी की वीणा तथा एक बहुत बड़ी धनराशि की थैली अर्पण की गई थी।

३. गुजरात साहित्य सभा ने 'रणजीतराम-स्वर्ण-चन्द्रक' के लिये उनका वरण किया था।

४. १९५२-५३ में अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह ज़हीर शाह की ओर से स्वर्ण-चन्द्रक तथा अन्य भेंट का प्रदान।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२२. उपसंहार

भावी आशाएँ तथा मंगल-प्रार्थना

इस परम मंगलमय अवसर पर पंडितजी के विनयावनत शिष्य-प्रशिष्य, उनके गुणानुरागी मित्रगण, कलामुग्ध सर्वसामान्य प्रजा, स्नेहीजन तथा प्रिय सहयोगी सब मिलकर उनकी श्री, विजय और भूति की गाथा को स्मरण करते हुए, संगीत जगत् को उनसे जो भावी आशाएँ हैं, उनके दीप सँजो कर आरती उतारते हुए हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। कुछ काल पूर्व तक का उनका जीवन मुख्यतः कला की विजयश्री से ही विभूषित था और उनके शास्त्रकार रूप का बीज उस पूरे काल में संवर्धन पाता हुआ फलीभूत होने की तैयारी में था। किन्तु अब उस वृक्ष के अमृतफल संगीत उद्यान में फलने प्रारम्भ हुए हैं। पंडितजी की कला-वल्लरी का सौरभ जिस प्रकार उस उद्यान में व्याप्त है उसी प्रकार उनके ये शास्त्रफल भी अब विद्वज्जनों के आस्वादन योग्य बने हैं। अतः उनके कार्य का अब चिरवसन्त आरम्भ हुआ है और इसी नवविकास के काल में संगीत जगत् के आशाभरे लोचन उनकी ओर लगे हुए हैं। उन लोचनों की दृष्टि से हम भी आशा की उज्ज्वल किरणों का दर्शन कर लें।

प्रथम किरण—'प्रणव-भारती' की प्रथम वीणा ने जैसे स्वर शास्त्र की सुरीली झंकार सुनाई, उसीकी भाँति रागशास्त्र और संगीत के रसशास्त्र की आगामी दो वीणाओं की गूँज सुनने के लिये शास्त्रानुरागी, संगीत साधक एवं कला प्रेमी लालायित हैं।

द्वितीय किरण—'संगीताञ्जलि' के रूप में जिस पाठ्य पुस्तक माला की रचना हो रही है, स्नातकोत्तर कक्षा तक के पाठ्य क्रम की उसकी आठों लड़ियाँ पूरी होते देखने को विद्यार्थी समाज एवं शिक्षक-वर्ग समुत्सुक है।

तृतीय किरण—विभिन्न रागों की जो पुरानी बंदिशें लोप होती जा रही हैं या स्थूलता के आवरण में अपने सौंदर्य को खो बैठने से आशंकित हैं उनकी सूक्ष्मता की रक्षा करते हुए उनका प्रामाणिक संग्रह संगीत-लिपि के रूप में पाने के लिये संगीतसेवी उत्कंठित हैं।

चतुर्थ किरण—राग की स्वर देह में रसभावानुकूल काव्य की प्रतिष्ठा रसबोध की दृष्टि से बहुत आवश्यक है। वाग्गेयकार पंडितजी से ऐसी रसभावानुकूल नवीन बन्दिशों की प्राप्ति के लिये संगीत समाज आशान्वित है।

पञ्चम किरण—रागों के स्वरान्तराल-भेद, उच्चार-भेद, लय-भेद, स्थान-भेद इत्यादि से उनकी भाव-देह में जो व्यक्तिगत वैशिष्ट्य आता है, उसे दृष्टि में रखते हुए सभी रागों को एक ढर्रे से गाना, सभी में एक शैली से आलाप तान लेना वैज्ञानिकता की कमी है। प्राचीन शास्त्रों में वर्णित शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी आदि गीतियों पर आधारित राग-वर्गीकरण का सारतत्त्व निकालकर आधुनिक रागों में वैज्ञानिक दृष्टि से शैली निर्धारण का कार्य पंडितजी को सौंप कर कलानुरागी तथा शास्त्रानुरागी निश्चिन्त हैं।

षष्ठ किरण—वायुमंडल में व्याप्त होकर लीन हो जानेवाला संगीत अब विज्ञान की महिमा से चिरस्थायी बनाया जा सकता है। पंडितजी का दिव्य संगीत भावी पीढ़ियों के लिये आनन्द, प्रेरणा तथा शिक्षण का स्रोत बना रहे, इस दृष्टि से उनके विपुल रिकॉर्ड साहित्य का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्माण राष्ट्रीय महत्त्व रखता है। इस महान् कला-वैभव को भावी पीढ़ियोंके लिये छोड़ जाने के दृढ़ विश्वास से वर्तमान पीढ़ी गौरवान्वित है।

सप्तम किरण—यांत्रिक रिकॉर्ड के साथ-साथ जीवन्त रिकॉर्ड के रूप में पंडितजी की एक सबल शिष्य-परम्परा पाने की राष्ट्र को बलवती आशा है। उसी प्रकार पंडितजी की अपनी लेखनी से निःसृत उनकी साधना-गाथा को अमूल्य प्रेरणाप्रद साहित्य के रूप में पाने की वर्तमान तथा भावी सन्तति की साधिकार कामना है। पंडितजी के इस अपार ऋषि-ऋण के कारण देशवासी उनके समक्ष कृतज्ञता-भार से अवनत हैं।

आशा की इन सप्तरश्मियों के पावन आलोक में हम पंडितजी के नामके साथ अभिन्न रूप से सम्बद्ध 'प्रणव' या ब्रह्म का श्रुतियों से संकलित उद्गीथ गुँजाते हुए उसी ब्रह्म से इन स्वरद्रष्टा की सुदीर्घ आयु तथा अक्षय स्वास्थ्य के लिये अनन्त प्रार्थना निवेदित करते हैं।

ॐ इति ब्रह्म ॐ इति इदं सर्वम्।
ओम् इत्येतद् अक्षरम् उदगीथम् उपासीत ॥ —छान्दोग्योपनिषत्।

ॐ इत्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपस्व्यानम्।
भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव।
यच्च अन्यत् त्रिकालातीतं तदपि ओङ्कार एव। —माण्डूक्योपनिषत्।

एष (ओङ्कारः) सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एष अन्तर्यामी,
एष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्। —माण्डूक्योपनिषत्।

सर्वे वेदा यत्पदम् आमनन्ति,तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यद् इच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ॥ ओम् इत्येतत्।
—कठोपनिषत्।

एतद् हि एव अक्षरं ब्रह्म एतद् हि एव अक्षरं परम्।
एतद् हि एव अक्षरं ज्ञात्वा यो यद् इच्छति तस्य तत् ॥—छान्दोग्योपनिषत्।

एतद् आलम्बनं श्रेष्ठम् एतद् ह्येवाक्षरं परम्।
एतद् ह्येवाक्षरं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥ —छान्दोग्योपनिषत्।

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवञ्चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मन्थनाभ्यासात् देवं पश्येन्निगूढवत् ॥ —श्वेताश्वतरोपनिषत्।

युञ्जीत चेतः प्रणवो ब्रह्म निर्भयम्।
प्रणवे नित्ययुक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित् ॥
—माण्डूक्योपनिषत्, गौड़पादीय कारिका।

प्रणवं हीश्वरं विद्यात् सर्वस्य हृदि संस्थितम्।
सर्वव्यापिनमोंकारं मत्वा धीरो न शोचति ॥
—माण्डूक्योपनिषत्, गौड़पादीय कारिका।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट

पंडितजी के साहित्य का अल्प परिचय

जीवन-चरित्र में हम देख चुके हैं कि पंडितजी संगीत के प्रयोगपक्ष तथा उसके शास्त्रपक्ष से सम्बन्धित दो ग्रंथमालाओंका प्रकाशन कर रहे हैं। इनमें से पहली का नाम है—'संगीताञ्जलि' और दूसरी का—'प्रणव-भारती'। इन दोनों ग्रंथमालाओं द्वारा पंडितजी ने संगीत के प्रयोगपक्ष और शास्त्रपक्ष के बीच बढ़ती हुई खाई को पाटने का सफल प्रयत्न किया है। अशिक्षित साधकों के हाथ में पड़ने से कला का शास्त्र से जो विच्छेद हुआ और प्रायोगिक संगीत से अनभिज्ञ पंडिताभिमानी 'शास्त्रकारों' के हाथ में पड़ने से शास्त्र की जो दिशाभूल हुई—भारतीय संगीत की यह परस्पर-सापेक्ष दोहरी अवनति दूर करने का श्रेय पंडितजी की इन दोनों ग्रंथमालाओं को निःसंदेह मिलेगा। यहाँ हम उन दोनों की विशेषताओं का अल्प दर्शन करेंगे। पंडितजी के कलाकार, शास्त्रकार और शिक्षक रूप की जो थोड़ी सी झाँकी हम जीवन-चरित्र में पा चुके हैं उसी का कुछ अधिक आलोक में यहाँ हमें दर्शन होगा।

१. संगीत के प्रयोगपक्ष से संबंधित 'संगीताञ्जलि' की मुख्य विशेषताएँ

इस ग्रंथमाला के अन्तर्गत चार भागों का प्रकाशन हो चुका है, पाँचवाँ भाग प्रेस में है, छठा तैयार हो रहा है और दसवें भाग तक इस ग्रंथमाला के प्रकाशन की योजना है। इन दसों भागों में पंडितजी के बनाये हुए स्नातकोत्तर (M. Mus. तथा D. Mus.) कक्षा तक के पाठ्यक्रम का समावेश होगा। इस ग्रंथमाला की प्रमुख विशेषताएँ ये हैं :—

१. इसमें पाठ्यसामग्री का जो क्रम रखा गया है वह वैज्ञानिक भित्ति पर आधारित है और विद्यार्थियों के क्रमिक विकास को सुगम बनाने की उसमें विशेष दृष्टि रखी गई है।

२. संगीत-लिपि की जो पद्धति इस ग्रंथमाला में अपनाई गई है उसमें सरलता तथा सूक्ष्मता दोनों को यथायोग्य स्थान मिला है; एक के लिये दूसरी का बलिदान नहीं हुआ है।

३. विभिन्न रागों की पुरानी बन्दिशें यथायथ रूप से संगीत-लिपि में अंकित की गई हैं और उनकी सूक्ष्मताओं की रक्षा करने का यथासम्भव यत्न किया गया है।

४. इन बन्दिशों को आलाप, बोलतान, तान, तिहाई इत्यादि गायकी के जिन अंगों से अलंकृत किया जाता है उन सब अंगों का यथोचित समावेश किया गया है। इस प्रकार रागों की केवल बन्दिशें न देकर पूरे गायकी अंग को भी संगीत-लिपि में अंकित किया गया है। पहले चार भागों में गायकी का यह समावेश, भावानुकूल स्वतंत्र विकास के लिये विद्यार्थियों का पथप्रदर्शन करने के निमित्त ही है।

५. विभिन्न रागों की विशेषताएँ ग्रह, अंश, न्यास आदि की प्राचीन पद्धति में समझाई गई हैं और सूक्ष्म रागांगों का विस्तृत तथा सुगम विवरण दिया गया है। विद्यार्थियों को रागांग की सूक्ष्मता समझाने के लिये तथा विभिन्न रागों की व्यक्तिगत विशेषताएँ हृदयंगम कराने के लिये यह बहुत ही आवश्यक तथा उपयोगी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

६. इस ग्रंथमाला के प्रत्येक भाग में तत्संबंधी पाठ्यक्रम के लिये आवश्यक शास्त्रीय विवरण का भी समावेश किया गया है। इस प्रकार पंडितजी की शास्त्रीय विचारधारा सरल तथा सुगम रूप में इन क्रमिक पाठ्य पुस्तकों में विद्यार्थियों को उपलब्ध है। आधुनिक ध्वनि-विज्ञान का आवश्यक प्रारम्भिक परिचय भी यथास्थान दिया गया है।

२. संगीत के शास्त्रपक्ष से संबंधित 'प्रणव-भारती' की प्रमुख विशेषताएँ

इस ग्रंथमाला का पहला भाग प्रकाशित हो चुका है और शेष दो का लेखनकार्य चालू है। प्रथम भाग स्वरशास्त्र से संबंधित है, द्वितीय भाग रागशास्त्र और तृतीय भाग रसशास्त्र से संबंधित होगा। प्रथम भाग की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

१. 'ग्राम' की उलझी हुई समस्या जो मध्ययुगीय तथा आधुनिक ग्रंथकारों के लिये पहेली सी बनी रही उसे सुलझा कर प्रत्यक्ष प्रायोगिक ढंग से समझाया गया है।

२. हमारे आधुनिक शुद्ध स्वरसप्तक यानी बिलावल के स्वर अविच्छिन्न रूप से भरतादि की प्राचीन परम्परा के साथ बँधे हुए हैं और हमारे शुद्ध स्वरों पर विदेशी प्रभाव नहीं है, इस सिद्धान्त का तर्कसंगत प्रतिपादन किया गया है।

३. बाईसों श्रुतियाँ किस प्रकार हमारे भिन्न भिन्न रागों में स्वर के रूप में प्रयुक्त होती हैं यह दिखाते हुए बारह स्वरों पर भारतीय संगीत को आधारित बताने वाले लेखकों की मान्यता का खंडन किया गया है।

४. कर्णाटक संगीत तथा हिन्दुस्तानी (भारतीय) संगीत के शुद्ध स्वरसप्तक में भरत के सिद्धान्त के अनुकूल समन्वय की दिशा दिखाई गई है।

५. 'मूर्च्छना', 'जाति', 'तान' इत्यादि विषयों की स्पष्ट व्याख्या की गई है।

रागशास्त्र से संबंधित दूसरे भाग में भरत की बताई हुई जातियों से ही किस प्रकार रागों का विकास हुआ है यह निरूपित किया जायगा और इस प्रकार भरत के निम्नलिखित वाक्य की यथार्थता सिद्ध होगी:—

यत्किञ्चिद् गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम्।

अर्थात् लोक में जो कुछ भी गाया जाता है वह जातियों में समाविष्ट है।

राग-रागिनी पद्धति, मेल-पद्धति, थाट-पद्धति—राग-वर्गीकरण के ये जितने प्रकार प्रचलित हैं, इन सब के गुण-दोषों की तुलनात्मक आलोचना तथा भरत-मतंग इत्यादि प्राचीनों के सिद्धान्तों पर आधारित राग-वर्गीकरण की एक मौलिक पद्धति का आविष्कार—ये दोनों इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषताएँ होंगी। साथ ही सभी प्रचलित तथा अप्रचलित रागों की सूक्ष्म विशेषताओं का शास्त्रीय विवरण भी रहेगा।

रसशास्त्र से संबन्धित तृतीय भाग में तो पंडितजी की प्रतिभा का भव्यतम दर्शन पाने की संगीत जगत् को आशा है क्योंकि साहित्य के रसशास्त्र को संगीत के प्रत्यक्ष प्रयोग में एवं शास्त्र के क्षेत्र में घटित करनेवाले वे अकेले संगीतकार हैं। इस ग्रन्थ में पंडितजी की निगूढ़ तथा विशाल रसदृष्टि संगीतकार, कला-मर्मज्ञ तथा सामान्य जन—सभी के लिये रोचक और ज्ञानप्रद होगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'प्रणव-भारती' के प्रथम भाग पर कुछेक सम्मतियाँ

१. अरविन्द आश्रम, पाण्डीचेरी के अध्वर्यु श्री अम्बुभाई बालकृष्ण पुराणी:—

"संगीत के क्षेत्रमें शकवर्ती साहित्य के सर्जन के लिये बत-बहुत अभिनन्दन। (यह सर्जन) इतना शास्त्रीय है, प्रतीतिजनक है और प्रत्यक्षावबोधक है कि इसका अस्वीकार स्वमताग्रही या दुराग्रही ही करेंगे।

बाईस श्रुतियाँ, श्रुति का अन्तर, श्रुतियों के असमान अन्तर की सिद्धि, एवं सभी श्रुतियाँ हमारे संगीत में स्वर-स्थान पाती हैं, इसकी शास्त्रीय पुनःस्थापना तथा दो ही ग्राम क्यों अनिवार्य हैं, इत्यादि अनेक बातोंके शास्त्रीय विवेचन से यह सिद्ध हुआ है कि आप सच्चे अर्थ में संगीत-सम्राट् हैं और प्राचार्य हैं।

आप संगीत की सेवा के निमित्त एक सौ पच्चीस वर्ष का आयुष्य स्वास्थ्य सहित प्राप्त करें, ऐसी प्रभु से प्रार्थना है।

श्री माताजी तथा श्री अरविन्द के आशीर्वाद हों। अधिक से अधिक दिव्यता की ओर कला भक्ति द्वारा आरोहण हो। दिव्यता को इस पृथ्वी पर संगीत के दिव्य आन्दोलन द्वारा उभारने की प्रभु शक्ति दे।"

२. माननीय डा० सम्पूर्णानन्द :—

"ऐसे ग्रन्थ की रचना करने के लिए आप संगीत के सभी प्रेमियों की कृतज्ञता के पात्र हैं। आप जैसे विद्वान् ही ऐसी पुस्तक लिख सकते थे। अब तो हम इस बात को भूल गये हैं कि स्वर का उद्‌गम कहाँ है। 'प्रणव' का अर्थ अ, उ म् मात्र हो गया है और इन अक्षरों से नाना प्रकार के अर्थ निकाले जाते हैं, परन्तु इस ओर ध्यान नहीं जाता कि वास्तविक प्रणव का अनुभव योगी को ही होता है।......यदि संगीत का अभ्यासी वास्तविक नाद का भी अभ्यास करे और सुषुम्ना रन्ध्र में गुरुसेवा द्वारा प्रवेश करने का थोड़ा सा भी यत्न करे तो उसके संगीत की वही अवस्था हो जो सोने में सुगन्ध के आने से हो सकती है। आपने याज्ञवल्क्य की स्मृति के जिस श्लोक को उद्धृत किया है वह लोगों की जिह्वा पर बराबर रहता है, पर लोग इस बात को भूल जाते हैं कि उसका ठीक-ठीक अर्थ उसी गायक और वादक पर घटता है जो योगी और अभ्यासी भी हो।

पुस्तक का प्रणयन करने के लिये आपको पुनः अभिवादन करता हूँ। भगवान् करे इसकी शेष वीणाएँ भी शीघ्र प्रकाशित हो सकें।"

३. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त :—

"यह देखकर बड़ा हर्ष होता है कि संगीत के सम्बन्ध में जैसा उच्च कोटि का आप का व्यवहार पक्ष है, वैसा ही सैद्धान्तिक पक्ष भी है। यह ग्रन्थ इसका प्रमाण है। संगीत की ही नहीं, इसके द्वारा हिन्दी साहित्य की भी आपने श्रीवृद्धि की है।"

४. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल :—

"आपकी सुविरचित पुस्तक 'प्रणव भारती' भारतीय संगीत के विरल साहित्य में एक घटना सी जान पड़ती है। भारतीय संगीत अभी प्रयोगात्मक विद्या है, पर भविष्य में उसका जो नूतन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्र रचा जाएगा, उसकी आपने आधारशिला रख दी है। अवश्य ही यह आप की दीर्घकालीन साधना का परिणाम है। नाद, श्रुतियाँ और स्वरों के संबंध में प्राचीन आचार्यों ने जो ऊहापोह किया है, उसका प्रामाणिक विवेचन तो आप ने किया है, भिन्न मतों की समीक्षा भी अपने अनुभव के आधार पर की है। श्रुतियों के शास्त्रीय स्वरूप और उनके नामों की अनुभूतिगम्य भावात्मक व्याख्या आपकी रसपूर्ण शैली का अद्‌भुत परिचय देती है। आपके इस महान् ग्रन्थ पर मैं आपको शतशः बधाई देता हूँ। हमारे इस विश्वविद्यालय में संगीत का कल्पवृक्ष आपकी साधना से फलवान् हो रहा है, यह देखकर चित्त आनन्द से भर जाता है।"

लेखिका
प्रेमलता शर्मा

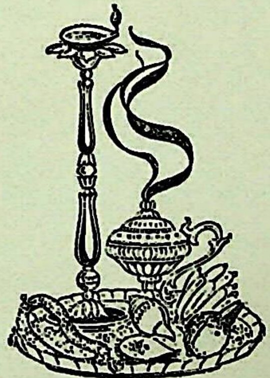

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हीरक-जयन्ती-समारोह की सेवा-समिति के सदस्यगण

प्राध्यापक तथा कार्यकर्ता श्री कला संगीत भारती, का० वि० वि०

१—श्री जगन्नाथ अहिवासी
२—श्री वलवन्तराय भट्ट
३—डाक्टर कुमारी प्रेमलता शर्मा
४—श्री रामकृष्ण ल० पर्वतकर
५—श्री कनकराय त्रिवेदी
६—श्री राजाभाऊ सोनटक्के
७—श्री एम० वी० कृष्णन्
८—कुमारी नलिनी गजेन्द्रगडकर
९—श्री माधव वामन ठकार
१०—श्री राजभान सिंह
११—श्री एस० के० अवधानी
१२—श्री डी० पी० पटनायक
१३—श्री माहेश्वर झा
१४—श्री राजनारायण प्रसाद श्रीवास्तव
१५—श्री जीतन राम पांडे
१६—श्री स्वामी निजबोध

प्राध्यापक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (अन्य संस्थाएँ)

१—सुश्री विमलाताई देवधर
२—सुश्री पद्मा मिश्र
३—श्री त्रिलोचन पन्त
४—डॉ० आइ० सी० पांडे
५—डॉ० आर० एन० देसाई
६—डॉ० यू० वी० भट्ट

विद्यार्थी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

१—श्रीमती सुभद्रा कुलश्रेष्ठ
२—श्री गोपीकृष्ण नागर
३—श्री सीतापति शुक्ल
४—श्री चित्तरंजन ज्योतिषी
५—श्री अतुल देसाई
६—श्री प्रदीप दीक्षित
७—श्री ललित कुमार भट्ट
८—श्री राजेन्द्रप्रसाद भट्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

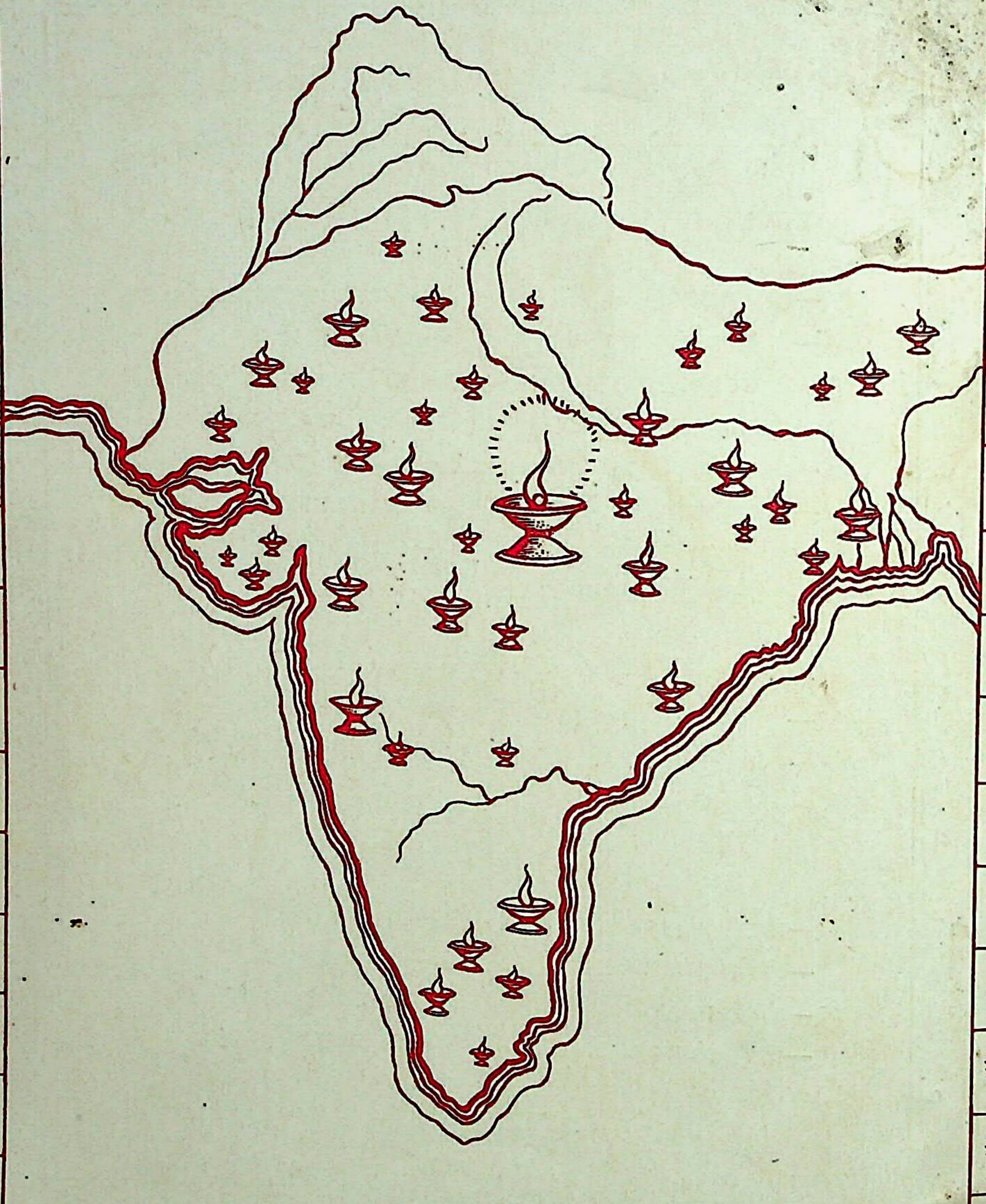

ओंकारनाथ ठाकुर अभिनन्दन-समिति, वाराणसी • मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi